# नया जीवन

## भाग 2

कक्षा सात के लिए हिंदी की पूरक पाठ्यपुस्तक

अनिरुद्ध राय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

**प्रथम संस्करण**
*मार्च 1998: चैत्र 1919*

**चौथा पुनर्मुद्रण**
*मार्च 2003 फाल्गुन 1924*

**PD 220 T RS**



**एन.सी.ई.आर.टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय**

| | | | |
|---|---|---|---|
| एन सी ई.आर.टी. कैम्पस | 108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे | नवजीवन ट्रस्ट भवन | सी.डब्लू.सी. कैम्पस |
| श्री अरविंद मार्ग | हेली एक्सटेशन बनाशंकरी III इस्टेज | डाकघर नवजीवन | 32, बी.टी. रोड, सुखचर |
| **नई दिल्ली 110 016** | **बैंगलूर 560 085** | **अहमदाबाद 380 014** | **24 परगना 743 179** |

**रु. 20.00**

प्रकाशन विभाग मे सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा प्रभात पब्लिसिटी, दरिया गंज, नई दिल्ली 110 002 द्वारा मुद्रित।

# प्राक्कथन

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के लागू होने के साथ ही ऐसी शिक्षण सामग्री की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा जो इस नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो। इस नीति के अनुसार शिक्षा बाल केंद्रित होगी और बच्चों के सर्वांगीण विकास पर ध्यान दिया जाएगा। इस उद्देश्य पूर्ति की दृष्टि से शिक्षाक्रम में कुछ ऐसे विषयों के समावेश पर बल दिया गया है जिनसे शिक्षार्थियों में प्रगतिशील सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना तथा उदात्त जीवनमूल्यों के प्रति स्वस्थ अभिवृत्ति का विकास हो सके। ये विषय हैं—राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, हमारी सांस्कृतिक विरासत, लोकतांत्रिकता, धर्म-निरपेक्षता, सामाजिक न्याय, समतामूलक समाज, नर-नारी समानता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि। इन विषयों को 'केंद्रिक शिक्षाक्रम' कहा गया है। इन विषयों के समावेश से भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान मिलने की पूरी संभावनाएँ हैं।

उपर्युक्त केंद्रिक शिक्षाक्रम के संदर्भ में विभाग ने उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6, 7, 8) पर हिंदी शिक्षण से संबंधित पूर्व-निर्धारित पूरक पुस्तकों पर नए सिरे से विचार करने और तदनुकूल पूरक पुस्तकों का निर्माण करने की योजना का संकल्प किया। पूर्व निर्धारित पुस्तकें थीं :

कक्षा 6 — संक्षिप्त रामायण
कक्षा 7 — (1) संक्षिप्त महाभारत (2) नया जीवन
कक्षा 8 — (1) जीवन और विज्ञान (4) त्रिविधा

इन पर विचार करने के लिए एक विभागीय समिति गठित हुई। उसके बाद इस समिति

द्वारा प्रस्तुत संस्तुतियों पर विचार करने के लिए भाषा विशेषज्ञों की एक विचारगोष्ठी आयोजित की गई। इस कार्यगोष्ठी में विभागीय समिति के सदस्य, विभागाध्यक्ष तथा विषय विशेषज्ञ समिति के सदस्यों ने भाग लिया। इस विचारगोष्ठी में निर्णय लिया गया कि:

1. कक्षा 6 में सांस्कृतिक विरासत और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से पूर्व निर्धारित 'संक्षिप्त रामायण' के महत्त्व को देखते हुए यथावत रखा जाए, पर उसका पुनरीक्षण और उसमें यथोचित संशोधन अवश्य कर लिया जाए।
2. कक्षा 7 में भी पूर्व निर्धारित 'संक्षिप्त महाभारत' को यथावत रखा जाए क्योंकि सांस्कृतिक विरासत और नैतिक जीवन मूल्यों की दृष्टि से उसे सर्वथा उपयुक्त समझा गया, पर इसके भी पुनरीक्षण और यथोचित संशोधन का सुझाव दिया गया।
3. कक्षा 8 में रामायण और महाभारत की ही भाँति किसी ऐसे प्रसिद्ध प्रबंधात्मक काव्य को रखने का सुझाव प्रस्तुत किया गया जिससे भारत की गौरवमयी संस्कृति का परिचय छात्रों को मिले। इस दृष्टि से महाकवि अश्वघोष के 'बुद्धचरित' को उपयुक्त समझा गया। निश्चय किया गया कि रामायण और महाभारत के समान ही इस ग्रंथ का भी सहज, सरल और रोचक हिंदी भाषा में संक्षिप्त संस्करण तैयार किया जाए।
4. कक्षा 8 में पूर्व निर्धारित 'जीवन और विज्ञान' तथा 'त्रिविधा' को हटाने का निर्णय लिया गया और यह सुझाव रखा गया कि कक्षा 6, 7, 8 में क्रमशः 'रामायण', 'महाभारत' और 'बुद्धचरित' के साथ-साथ एक-एक पूरक पुस्तक और रखी जाए। इन पूरक पुस्तकों में हिंदी के अतिरिक्त भारत की हिंदीतर भाषाओं तथा कुछ विदेशी भाषाओं से भी ऐसी रचनाएँ शामिल की जाएँ जो आधुनिक राष्ट्रीय संदर्भों से जुड़ी हों तथा छात्रों में व्यापक मानवीय और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में सहायक और प्रेरणादायी सिद्ध हों।

   इन रचनाओं में केंद्रिक शिक्षाक्रम से संबंधित कहानी, जीवनी, एकांकी, आत्मकथा, संस्मरण, घटनाओं आदि का चयन किया जा सकता है।

भारत की हिंदीतर भाषाओं से उपर्युक्त प्रकार की रचनाओं के शामिल करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि इनके द्वारा हिंदी में अखिल भारतीय साहित्य की छवि उजागर हो।

उपर्युक्त योजना के अंतर्गत कक्षा 7 के लिए पूरक पुस्तक के रूप में 'संक्षिप्त महाभारत'

का संशोधित संस्करण तैयार किया गया है। इसके अतिरिक्त दूसरी पाठ्यपुस्तक 'नया जीवन' भाग 2 का प्रणयन भी किया गया है। इसमें हिंदी के अतिरिक्त कन्नड़, कश्मीरी, तमिल, बँगला, मलयालम, सिंधी, अंग्रेज़ी साहित्य की कई विधाओं (हिंदी में अनूदित) को रखा गया है, जो आज के सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की समस्याओं और जीवनमूल्यों से जुड़ी हुई हैं, यथा :

राजा की प्रजावत्सलता तथा न्यायपूर्ण राज (राजधर्म), विदेशी सरकार के अन्यायपूर्ण दमन का विरोध और राष्ट्रीय सम्मान (सर की उपाधि लौटादी), सरल और सादा जीवन, सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य प्रेम (स्मृतियों के पन्नों से), भारत के विभाजन के कारण उत्पन्न दुखद स्थितियाँ तथा अभावों में पलने वाले जीवन का चित्रण (पिस्ते-बादाम), व्यंग्यात्मक शैली में झूठी शान और मिथ्या प्रदर्शन का उपहास (जब मैंने नेकटाई बाँधी), ज्ञान-विज्ञान की खोज और मानव कल्याण के लिए उत्सर्ग (पीढ़ी-दर-पीढ़ी), शिक्षा और खेल से वंचित बाल श्रमिक की व्यथा (बंधन का पंछी), सभी के सुख-दुख में सहभागिता, जीव-जंतुओं के प्रति प्रेम-दया तथा दूसरे की उन्नति के लिए स्वयं कष्ट सहन (बुआ जी), भारतीय धर्मो के प्रति श्रीलंकावासियों की अटूट आस्था (श्रीलंका की यात्रा), अंग्रेज़ी शासन के प्रति विद्रोह की भावना, देशप्रेम और निर्भीकता (खिलाफ़त आंदोलन: कराची का ऐतिहासिक मुकदमा), ब्रिटिश कालीन भारतीय राजनीतिक और सामाजिक दुर्व्यवस्था तथा शासकों के विवेकहीन आचरण का व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण (अंधेर नगरी), वाह्याचार से बचकर धन का उपयोग, दीन-दुखियों की सेवा के लिए धर्म की सही व्याख्या (स्वामी विवेकानंद का पत्र), विनोदात्मक शैली में एक काल्पनिक वैज्ञानिक प्रयोग (पाइक्राफ़्ट का मोटापा)।

इन रचनाओं से निश्चित ही हिंदी भाषा का वह रूप सामने आएगा जिसमें अखिल भारतीय जीवन की छवि प्रतिभासित होगी।

इस पुस्तक का निर्माण सामाजिक विज्ञान तथा मानविकी शिक्षा विभाग में उच्च प्राथमिक स्तर के लिए हिंदी पाठ्यपुस्तक निर्माण योजना से संबंधित डॉ. अनिरुद्ध राय ने किया है। इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माण में हमें अनेक विद्वानों, लेखकों तथा भाषाशास्त्रियों का

सहयोग मिला है। इसके लिए मैं उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। जिन लेखकों और अनुवादकों ने अपनी रचनाएँ इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति हमें दी है, उनके प्रति हम विशेष रूप से कृतज्ञ हैं।

मुझे विश्वास है कि बच्चों के भावात्मक विकास और चरित्र-निर्माण में यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी। इसके परिष्कार की दृष्टि से सुधी विद्वानों के सुझावों का हम सदा स्वागत करेंगे।

**अशोक कुमार शर्मा**
*निदेशक*
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

नई दिल्ली
मार्च 1998

# आभार

इस पुस्तक के निर्माण में कृपापूर्ण योगदान के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है :

श्री निरंजन कुमार सिंह, प्रोफ़ेसर माणिक गोविंद चतुर्वेदी, डॉ. आनंद प्रकाश व्यास, श्री लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय', डॉ. बाल सुब्रह्मण्यम, डॉ. कृष्ण कुमार गोस्वामी, डॉ. मानसिंह वर्मा, डॉ. श्याम बिहारी राय, डॉ. पीतांबर ठाकवानी, श्री प्रभाकर द्विवेदी, कुमारी इंद्रा सक्सेना, डॉ. (श्रीमती) सुधा सक्सेना, कुमारी विमला उप्रेती, श्री बी. एन. सिंह और श्री जमुना राय।

# गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं । जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा । क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आतमा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है ।

# पाठ-सूची

# 1. राजधर्म

(जातक कथाओं में महात्मा बुद्ध के पूर्वजन्म की घटनाएँ कहानी के रूप में वर्णित हैं। इन कथाओं में महात्मा बुद्ध को बोधिसत्व के रूप में संबोधित किया गया है। बोधिसत्व का अर्थ है वह व्यक्ति जो बुद्धत्व (अध्यात्म ज्ञान) प्राप्त करने का अधिकारी हो, पर अभी बुद्ध नहीं हो पाया हो। कहा जाता है कि वे 'गौतम बुद्ध' के रूप में प्रकट होने के पहले लगभग 550 बार विभिन्न योनियों में जन्म लेकर लोकोपकार का कार्य कर चुके थे। बोधिसत्व द्वारा मनुष्य जीवन को उदात्त बनाने के लिए उत्तम आचार-विचार, नीति और धर्म की बातें इन कथाओं में कही गई हैं।)

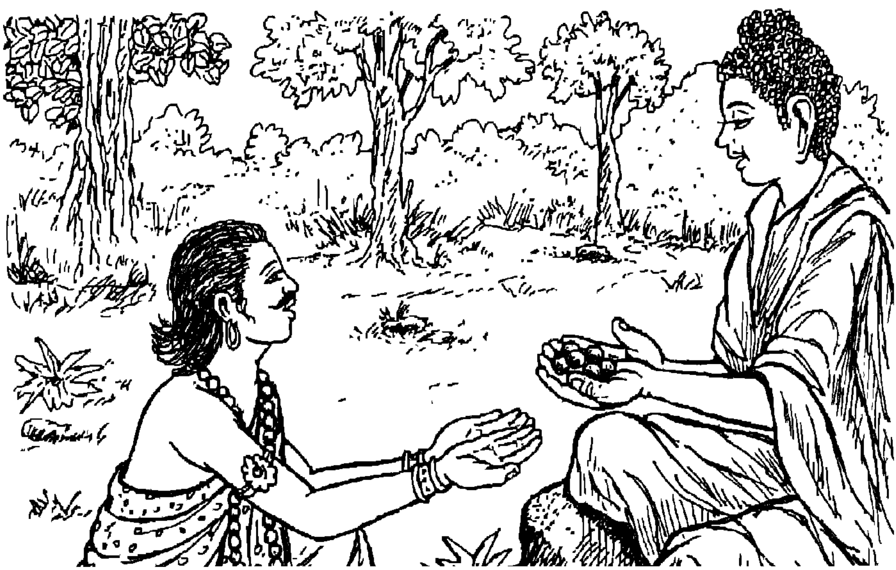
अति प्राचीन काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त नाम का राजा राज करता था, जो अपनी धर्मप्रियता और न्याय परायण शासन के लिए प्रसिद्ध था। उसके शासनकाल में बोधिसत्व (बुद्ध) एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए थे। कुछ बड़े होने पर उन्होंने अनेक शिल्पों का ज्ञान प्राप्त किया। फिर ऋषि-प्रवज्या धारण कर वे रमणीय हिमालय प्रदेश में चले गए और कंद-मूल-फल आदि का सेवन करते हुए तपस्या में लीन रहने लगे।

ब्रह्मदत्त विवेकशील राजा था। वह सत्-असत्, उचित-अनुचित का सदा ध्यान रखता था। वह ऐसे व्यक्ति को ढूँढ़ता था, जो उसके दोषों को बता सके।

प्रशंसा करने वाले तो सभी थे, दोष बतानेवाला कोई नहीं मिलता था। अंतःपुर, राजदरबार, नगर, नगर के बाहर सभी जगह लोग राजा के गुणों का बखान करते थे, पर उसके अवगुण बतानेवाला कोई नहीं था।

राजा ने सोचा कि जनपद में कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जो उसके दोष बता सके। अतः भेस बदलकर वह पूरे जनपद में घूमा, पर वहाँ भी उसे अपना गुण ही सुनने को मिला, दोष नहीं। फिर वह घूमता हुआ हिमालय प्रदेश पहुँचा। घने जंगलों और दुर्गम पर्वतों को पार करता हुआ वह सुरम्य हिमालय प्रदेश में स्थित बोधिसत्व के आश्रम पर जा पहुँचा। उसने उन्हें श्रद्‌धापूर्वक प्रणाम किया। बोधिसत्व ने राजा का कुशल-क्षेम पूछा। फिर आश्रम में राजा एक ओर चुपचाप बैठ गया।

बोधिसत्व जंगल से पके गोदे लाकर खाते थे। वे गोदे शक्तिवद्‌र्धक और शक्कर के समान मीठे थे। उन्होंने राजा को संबोधित कर कहा, "महापुण्य, ये



गोदे खाकर पानी पीओ।" राजा ने गोदे खाए और पानी पीया। उसे गोदे बड़े ही मधुर और स्वादिष्ट लगे। उसने बोधिसत्व से पूछा, "भंते, क्या बात है, ये गोदे बड़े ही मीठे और स्वादिष्ट हैं?"

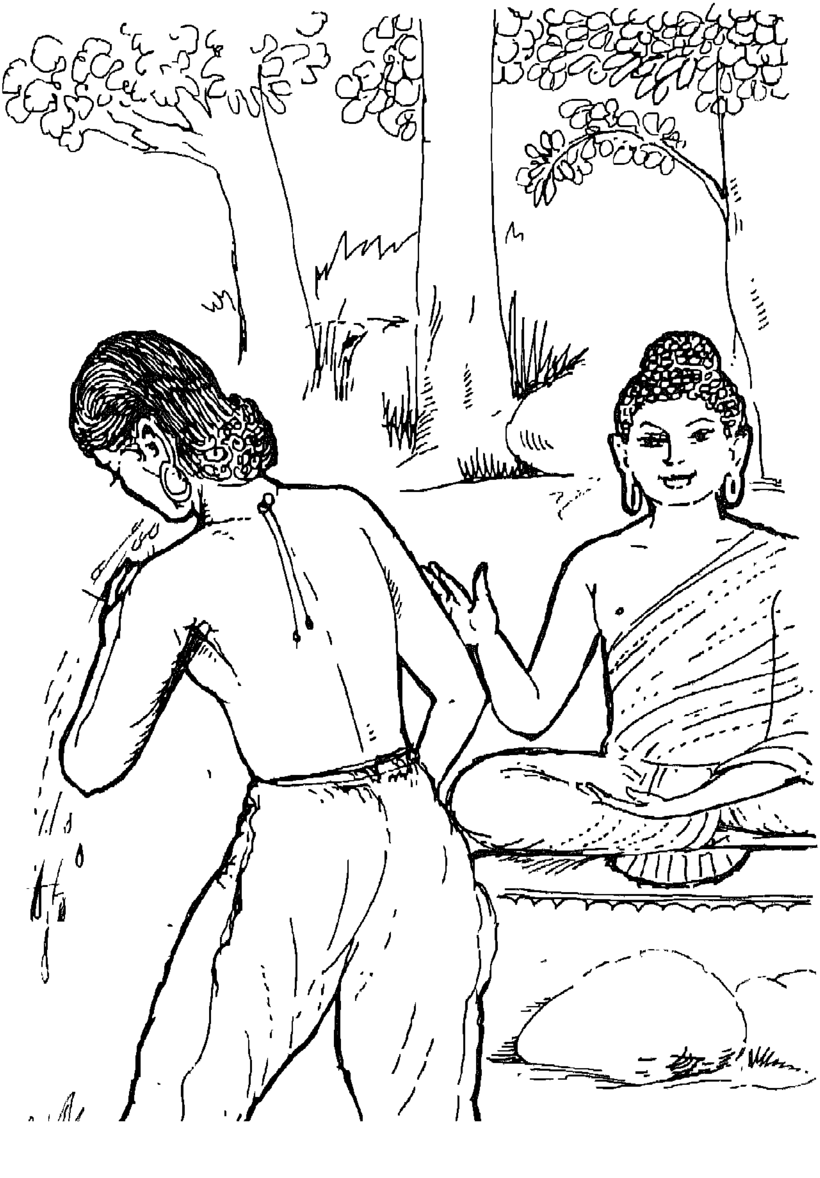
"महापुण्य, राजा निश्चय ही धर्मानुसार और न्यायपूर्वक राज करता है, उसी से ये इतने मीठे हैं। राजा के अधार्मिक और अन्यायी होने पर तेल, मधु, शक्कर आदि तथा जंगल के फल-फूल सभी कड़वे और स्वादहीन हो जाते हैं। केवल यही नहीं सारा राष्ट्र ओज-रहित हो जाता है, दूषित हो जाता है। राजा के धार्मिक और न्याय-प्रिय होने पर सभी वस्तुएँ मधुर और शक्तिवर्द्धक होती हैं और सारा राष्ट्र शक्तिशाली तथा ओजस्वी बना रहता है।"

"भंते, ऐसा होता होगा", यह कहकर राजा अपना परिचय दिए बिना ही बोधिसत्व को प्रणाम कर अपनी राजधानी लौट आया। उसने सोचा, तपस्वी बोधिसत्व के कथन की परीक्षा करूँगा। अधर्म और अन्याय से राज करूँगा और देखूँगा कि बोधिसत्व की बात में कितनी सच्चाई है। राजा ने ऐसा ही किया। कुछ समय बीत जाने पर वह फिर बोधिसत्व के आश्रम में पहुँचा और उन्हें प्रणाम कर एक ओर बैठ गया।

बोधिसत्व ने फिर पके गोदे दिए। राजा को वे गोदे बड़े ही कड़वे लगे। राजा ने गोदे थूक दिए और कहा, "भंते, ये बड़े कड़वे हैं।"

"महापुण्य, राजा अवश्य अधार्मिक और अन्यायी होगा। राजा के अधार्मिक और अन्यायी होने पर जंगल के फल-फूल तथा सभी वस्तुएँ नीरस और कड़वी हो जाती हैं, स्वाद रहित हो जाती हैं, यही नहीं सारा राष्ट्र ओज-रहित हो जाता है।"

राजा के और जिज्ञासा करने पर बोधिसत्व ने कहा, "गायों के नदी तैरते समय साँड (नेता) यदि टेढ़ा जाता है तो नेता के टेढ़े जाने के कारण सभी गाएँ



टेढ़ी जाती हैं और मार्ग से भटक जाती हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जो श्रेष्ठ होता है, वह नेता माना जाता है। यदि वह टेढ़े मार्ग से जाता है, अधर्म करता है तो सारी प्रजा कुमार्ग पर चलती है और अधर्म करने लगती है। राजा ही नेता होता है। राजा के धर्म-विमुख होने पर सारा राज्य दुख को प्राप्त होता है। गायों के नदी पार करते समय यदि साँड (नेता) सीधा जाता है, तो नेता के सीधा जाने के कारण सभी गाएँ सीधी जाती हैं और नदी पार कर जाती हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में जो श्रेष्ठ माना जाता है, वही नेता माना जाता है। यदि वह धर्म का अनुसरण करता है, तो शेष प्रजा भी धर्म का मार्ग अपनाती है। राजा के धार्मिक होने पर सारा राष्ट्र सुख को प्राप्त करता है।"

बोधिसत्व से यह शिक्षा प्राप्त कर राजा ने अपना राजा होना प्रकट किया और विनयपूर्वक बोला, "भंते, मैंने ही पहले गोदों को मीठा कर फिर कड़वा किया। अब फिर उन्हें मीठा करूँगा और कभी उन्हें कड़वा नहीं होने दूँगा। यही मेरा संकल्प और व्रत है।"

बोधिसत्व को प्रणाम कर वह राजधानी लौट आया और धर्म और न्यायपूर्वक राज करने लगा। उसका राज्य फिर धन-धान्य से भर गया।

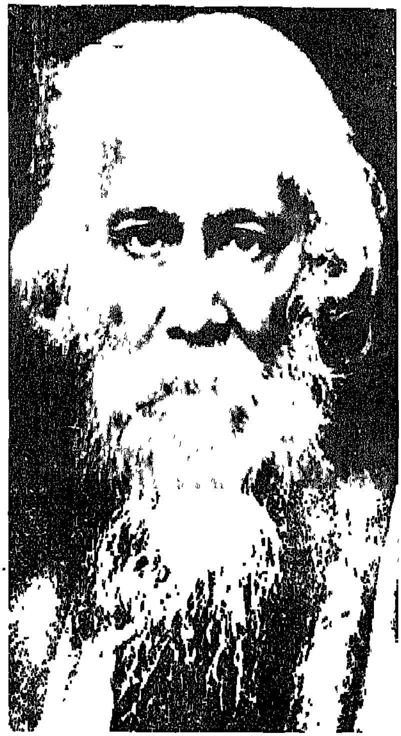
—जातक कथा से

# प्रश्न

1. राजा ब्रह्मदत्त के भेस बदलकर घूमने का क्या कारण था?
2. बोधिसत्व ने राजा को गोदों के बहुत मीठे और स्वादिष्ट होने का क्या कारण बताया?
3. राजा ने बोधिसत्व के कथन की परीक्षा किस प्रकार ली?
4. "नेता के धर्म-विमुख होने पर सारा राज्य दुख को प्राप्त होता है"—कथन का आशय समझाइए।



# 2. 'सर' की उपाधि लौटा दी



रवींद्रनाथ ठाकुर एशिया के पहले लेखक थे जिन्हें साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार मिला था। ब्रिटिश सरकार ने भी उन्हें 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया था।

हमारे देश के जीवन में एक ऐसा समय आया जब राष्ट्रीय आंदोलन ने एक जन-आंदोलन का रूप ले लिया। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष ने ज़ोर पकड़ा और उसे कुचलने के लिए विदेशी शासन द्वारा दमन-चक्र भी तेज़ हुआ। इस संघर्ष और दमन के काल में विदेशी शासन द्वारा दी गई 'सम्मान की उपाधियाँ' राष्ट्रीय अपमान का प्रतीक समझी जाने लगीं। अनेक भारतीयों ने ऐसी उपाधियाँ लौटा दीं।

रवींद्रनाथ ठाकुर उनमें से एक थे। उन्होंने जलियाँवाला बाग के हत्याकांड के विरोध में ब्रिटिश सरकार द्वारा दी गई 'सर' की उपाधि लौटा दी। इसे लौटाते समय उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश गवर्नर जनरल को एक पत्र लिखा जो हमारे राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्वपूर्ण दस्तावेज़ है।

जलियाँवाला बाग का हत्याकांड हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास की एक दुखद घटना है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत का राष्ट्रीय आंदोलन एक नए मोड़ पर पहुँच गया था। दूसरी ओर विदेशी शासकों ने एक 'रौलट एक्ट' नाम का नया कानून बना कर इस जन-आंदोलन को कुचलने के लिए पहले से भी अधिक निरंकुश नीति अपनाई। इस नए कानून को भारतवासियों ने 'काला-कानून' कहा। इसके विरुद्ध देश भर में गांधी जी के नेतृत्व में सत्याग्रह शुरू किया गया। इसी समय सरकार ने अमृतसर में दो राष्ट्रीय नेताओं डॉ. सत्यपाल और डॉ. सैफुद्दीन किचलू को गिरफ़्तार करके किसी अज्ञात स्थान पर बंद कर दिया था। 13 अप्रैल 1919 को बैसाखी के दिन इन नेताओं की गिरफ़्तारी का विरोध करने के लिए एक जनसभा हुई। यह जनसभा अमृतसर के जलियाँवाला बाग में हुई थी। जलियाँवाला बाग एक मैदान था जो चारों ओर मकानों से घिरा हुआ था और उसमें आने-ज़ाने का केवल एक सँकरा रास्ता था। सभा पूर्णतः शांतिपूर्वक चल रही थी। उसमें हज़ारों लोग—बूढ़े, बच्चे, स्त्री-पुरुष मौजूद थे। किंतु विदेशी शासकों के लिए यह एक चुनौती बन गई। एक अंग्रेज़ अफ़सर जनरल डायर फ़ौजी दस्ता लेकर वहाँ पहुँचा। उसने बाहर निकलने के एकमात्र रास्ते पर सैनिक दस्ता खड़ा कर दिया। फिर बिना किसी चेतावनी के उसने अपने फ़ौजियों को मशीनगन से लोगों पर गोलियाँ चलाने का आदेश दिया। फ़ौजी उस समय तक अंधाधुंध गोलियाँ चलाते रहे जिस समय

तक गोलियाँ खत्म नहीं हो गईं। लोगों को बाहर निकलने का अवसर नहीं दिया। स्त्रियों और छोटे-छोटे बच्चों तक को भी नहीं बख्शा गया। इस कांड में सैकड़ों लोग मारे गए और हजारों घायल हुए। हत्याकांड के बाद पूरे पंजाब में 'मार्शल लॉ' लगा दिया गया और जनता के साथ जघन्य और बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया गया। कई दिनों तक ब्रिटिश सरकार ने इस हत्याकांड की खबर नहीं फैलने दी। धीरे-धीरे यह खबर पंजाब के बाहर फैली तो देश-भर में अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध आक्रोश की लहर दौड़ गई। इस हत्याकांड की खबर से रवींद्रनाथ ठाकुर को भी बड़ा आघात पहुँचा।

30 मई 1919 ई. को रवींद्रनाथ ठाकुर ने इस हृदय-विदारक घटना के विरोध में 'सर' की उपाधि लौटाते हुए जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है—

6 द्वारिकानाथ लेन
कलकत्ता

महामहिम,

पंजाब सरकार ने कुछ स्थानीय गड़बड़ियों की कुचलने के लिए जो निर्मम कदम उठाए हैं, उनकी भयंकरता के कठोर धक्के ने ब्रिटिश प्रजा के रूप में हमारी असहाय स्थिति को स्पष्ट कर दिया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि अभागे लोगों को जो अमानवीय दंड दिया गया है और उसके लिए जो तरीके अपनाए गए हैं उनकी मिसाल किसी भी समय सरकार के इतिहास में न तो अतीत में मिलती है और न वर्तमान में ही। इस बात का विचार करते हुए कि जिस शक्ति के पास मानव जीवन के विनाश के लिए सबसे सबल साधन है, वह निहत्थी और साधनहीन जनता के साथ ऐसा व्यवहार करे। हम ज़ोर देकर कहना चाहते

हैं कि न तो इससे कोई राजनीतिक प्रयोजन सिद्ध होता है और न इसका कोई नैतिक औचित्य ही है।

धार्मिक विचारों की दुहाई देकर यहाँ मैं अपनी सफ़ाई नहीं देना चाहता। हमारे पंजाबी भाइयों ने जो अपमान और पीड़ा सही है, उसकी कहानी दबी हुई आवाज़ के साथ व्यक्त होकर पूरे भारत में फैल गई है। इससे हम लोगों के हृदय में जो सर्वव्यापी धिक्कार की भावना पैदा हुई, उसकी अवहेलना अंग्रेज़ी शासकों ने संभवतः अपने को इस बात पर बधाई देते हुए कर दी कि उन्होंने हमें उचित पाठ पढ़ा दिया। यहाँ के अधिकांश आंग्ल भारतीय अखबारों ने इस निर्ममता की प्रशंसा की है और कुछ अखबारों ने इस पाशविक निष्ठुरता से पूर्ण हमारे संताप का परिहास भी किया है। अधिकारियों की निर्बाध निरंकुशता का विरोध किसी ने नहीं किया है। कराहती हुई भारतीय जनता की पीड़ा एवं उनके विचारों को भी सही-सही व्यक्त नहीं किया गया है। जो सरकार न्याय का पालन करके भौतिक और नैतिक दृष्टि से महान हो सकती थी, उसे घोर राजनीतिक प्रतिरोध ने अंधा बना दिया है। इसीलिए भारतीय लोगों की सब प्रार्थनाएँ भी व्यर्थ हो गई हैं।

मैं अपने देशवासियों की इस मूक व्यथा के लिए कम–से–कम इतना तो कर ही सकता हूँ कि अपना विरोध व्यक्त करूँ और उसका परिणाम अपने ऊपर लूँ। आज सम्मान की पदवी हमारे अपमान के विसंगत संदर्भों को उभार रही है। इसीलिए मैं सभी विशिष्टताओं से मुक्त होकर अपने उन देशवासियों के साथ खड़ा होना चाहता हूँ जो तथाकथित तुच्छता के कारण मनुष्य के लिए अनुपयुक्त हीनता सहन करने के लिए बाध्य हुए हैं। इन्हीं उपर्युक्त सभी तथ्यों के कारण विवश होकर खेद के साथ मुझे महाराजाधिराज से प्राप्त 'सर' (नाइट)

की पदवी से मुक्त होने के लिए अनुरोध करना पड़ रहा है, जिसे मैंने आपके उन पूर्वाधिकारी के हाथों से ग्रहण किया था, जिनकी महानता के प्रति मेरे मन में अब भी श्रद्धा है।

आपका,

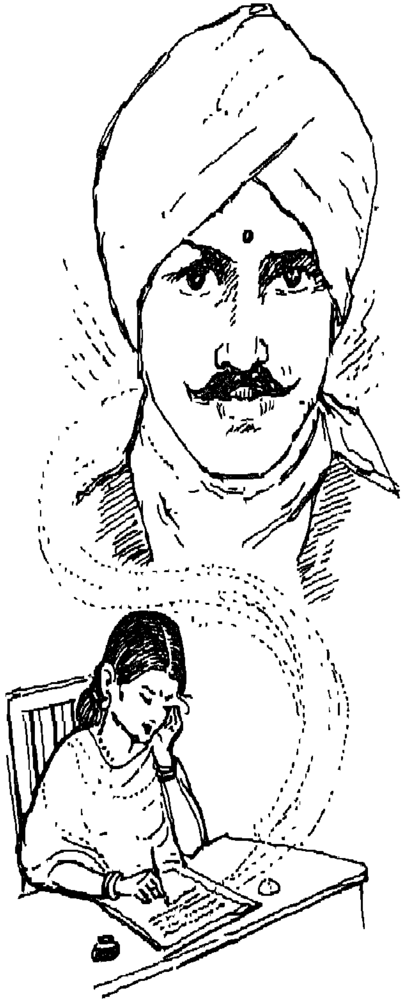
30 मई 1919 रवींद्रनाथ ठाकुर

लेखक एवं अनु० **कैलाशचंद्र भाटिया**

## प्रश्न

1. जलियाँवाला बाग हत्याकांड को रवींद्रनाथ ठाकुर ने अमानवीय और अपमानजनक क्यों बताया है?
2. उक्त कांड से ब्रिटिश सरकार का कौन-सा रूप उभर कर सामने आया?
3. रवींद्रनाथ ठाकुर ने ब्रिटिश सरकार से मिली 'सर' की उपाधि लौटाने का निश्चय क्यों किया?

# 3. स्मृतियों के पन्नों से



मैं पिताजी की लाड़ली बेटी थी। यद्यपि हम दो बहनें थीं, फिर भी ज़्यादातर मैं ही आखिर तक उनके साथ रही। बड़ी बहन अक्सर बुआ के पास रहती थी। पापा मुझे कण्णू (प्यारी) के नाम से पुकारा करते थे। मेरे जन्म के समय पिताजी महाकवि कालिदास के 'शाकुंतलम्' का अध्ययन कर रहे थे, इसलिए मेरा नाम शकुंतला रखा।

पिताजी अज्ञातवास में थे। वे पांडिचेरी प्रवास को ही अज्ञातवास कहा करते थे। माँ और मैं उनके साथ थीं। मेरे दोनों मामाजी भी बड़े देशभक्त थे। पिताजी की बड़ी मदद करते थे। मुसीबत के वक्त माँ हमें लेकर मायके चली जाती थीं। पिताजी बड़े स्वाभिमानी थे, दबकर रहना उनके

लिए असह्य था। कोई-कोई कहते भारती बैरागी हैं, गृहस्थी का ख्याल नहीं करते, पत्नी और बच्चों के प्रति लापरवाह हैं। लेकिन यह सरासर झूठ है। हाँ, सांसारिक दृष्टि से, लोगों की राय में वे बैरागी थे। नोन, तेल, लकड़ी की समस्या पर सिर खपाने का उन्हें अवकाश ही कहाँ था। पैसे कमाने की कला में वे माहिर न थे। उनके निकट के आत्मीय मित्रों के अलावा उनके महत्त्व को समझने वाला, उनको प्रोत्साहित करने वाला, सहायता करने वाला कोई न था।

सन् 1908 में पिताजी पांडिचेरी में आए और सन् 1918 तक वहीं रहे। दस साल की इस लंबी अवधि में उन्होंने क्या-क्या कष्ट नहीं झेले। मानसिक और आर्थिक क्लेश से पीड़ित पिताजी के वे दिन अत्यंत दुखदायक रहे। मैं उस समय सात-आठ साल की थी, फिर भी मेरे स्मृतिपटल पर अंकित वे चित्र आज भी ताज़े हैं।

पिताजी का जन्म 11 दिसंबर, 1882 में तमिलनाडु के तिरुनेलवेली जिले के एट्टयपुरम नामक ग्राम में हुआ था। बालक का नाम रखा गया सुब्रह्मण्य। वे पाँच वर्ष के थे कि उनकी माँ चल बसीं। वे अपने नाना के लाड़-प्यार में पले। वे शारीरिक रूप से कमज़ोर और स्वभाव से संकोची थे। दादाजी (भारती के पिता) चाहते थे कि उनका बेटा अंग्रेजी पढ़-लिखकर अफ़सर बन जाए। लेकिन बेटे को स्कूली पढ़ाई में उतनी दिलचस्पी न थी। छुटपन से ही कविता के प्रति उनकी रुचि थी। वे अक्सर छोटी-मोटी तुकबंदी करते, गीत लिखते और मित्रों को सुनाते थे। सात वर्ष की उम्र में ही उनकी प्रतिभा पर विद्वान लोग चकित रह जाते। नौवें साल में वे समस्यापूर्ति करने में समर्थ हो गए। ग्यारहवें वर्ष में उन्हें 'भारती' की उपाधि मिली। उस दिन से पिताजी कवि सुब्रह्मण्य 'भारती' कहलाने लगे।

गाँव की पढ़ाई पूरी होते ही पिताजी उच्च शिक्षा के लिए तिरुनेलवेली भेज दिए गए। वहाँ पर तीन साल पढ़ते रहे। स्कूल के तमिल पंडित अक्सर उन

पर छींटे कसते। एक दिन कक्षा में ऊँचे आसन पर बैठे हुए भारती को देखकर उन्होंने ताना मारा—"कहा जाता है कि आप कवि कालमेघ हैं। (कालमेघ शिष्ट शब्द है—कालमेघ तमिल के प्राचीन कविश्रेष्ठ हैं और दूसरा अर्थ है कालामेघ) इतने ऊँचे आसन पर आसीन होकर भी आप बरसते क्यों नहीं?" भारती जी ने झट कहा – "जी ! पडित होकर भी आप प्रकति का स्वभाव नहीं जानते।" कालामेघ अपनी मजी से ही बरसता है, पंडितों की आज्ञा से नहीं।" यह घटना उस उम्र में ही पिताजी की निर्भीकता का परिचय देती है।

1897 के जून महीने में कवि भारती का विवाह कडैयम नेल्लप्पा अय्यर की सुपुत्री चेल्लम्मा के साथ बड़ी धूमधाम से हुआ। पाँच साल के बाद मेरे दादाजी का देहांत हो गया। अब प्रश्न यह उठा कि भारती किसके पास रहें? आखिर उनकी बुआ उन्हें अपने साथ काशी ले गई। वहाँ पर उन्होंने संस्कृत और हिंदी का अध्ययन किया। काशीवास के समय ही वे श्रीमती एनी बेसेंट के संपर्क में आए। इस संपर्क से उनका हृदय राजनीति की ओर झुका। सबसे पहला काम भारती ने यह किया कि उन्होंने चोटी (शिखा) और लंबी मूँछ रख ली जो अंत तक बनी रही। यही नहीं, उत्तर भारतीयों की तरह साफ़ा भी बाँध लिया। इस बात को लेकर घर, परिवार में काफी हलचल हुई। इसी बीच में एट्टयपुरम रियासत के ज़मींदार काशी आए हुए थे वे कवि भारती पर प्रसन्न होकर उन्हें अपने साथ एट्टयपुरम ले गए।

कवि भारती के जीवन का पहला पृष्ठ दरबारी कवि के रूप में खुला, किंतु काव्य रसिक ज़मींदार की रसिकता की प्यास बुझाने में भारती असमर्थ रहे। उस विलासितापूर्ण वातावरण में उनका दम घुटने लगा। उनका मन विद्रोह कर उठा।

सन् 1904 में उनके जीवन ने एक नया मोड़ लिया। भारती मद्रास आए और 'स्वदेश मित्र' में उप-संपादक बने। अब कवि भारती, मात्र कवि ही नहीं,

क्रांतिकारी देशभक्त भी थे। उनका प्रखर व्यक्तित्व एवं प्रभावशाली लेखनी पत्रिका-जगत में खुलकर अपनी करामात दिखाने लगी। उनके लेखों ने तमिल गद्य की शैली में युगांतकारी परिवर्तन किया। पाठक मुग्ध हो उठे। उनकी कीर्ति बढ़ने लगी, लेकिन अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण वे पुलिस की नज़रों में खटकने लगे।

भारती 'इंडिया' (उस समय का प्रसिद्ध राजनीतिक समाचारपत्र) के संपादक बन गए। जनता में व्याप्त पराजित भावना, उत्साहहीनता को कवि ने महसूस किया। और उन्होंने ऐसी कविताएँ लिखीं जिनसे जनता की रग-रग में नया जोश भर गया। 1908 में प्रकाशित 'स्वदेश गीत' भारती की पहली प्रकाशित रचना है। उसमें चौदह गीत हैं। सन् 1909 में उनका दूसरा ग्रंथ 'जन्मभूमि और स्वदेश गीत' प्रकाशित हुआ।

श्री अरविंद घोष अपने समय के प्रमुख क्रांतिकारी थे। एक बमकांड में ब्रिटिश सरकार उनके विरुद्ध मुकदमा चला रही थी,लेकिन सन् 1910 में वे अंग्रेज़ी पुलिस की आँखों में धूल झोंककर गुप्त रूप से पांडिचेरी आ गए। उस समय पिताजी पांडिचेरी में ही थे। उन्होंने तथा उनके मित्र श्री निवासाचार्य ने श्री अरविंद का स्वागत किया। अरविंद बाबू का मन राजनीति से विरक्त होकर योगमार्ग की ओर प्रवृत्त हो गया था। उन्होंने 'कर्मयोगी' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। पांडिचेरी में रहकर भारती उसका तमिल रूपांतर निकालते रहे।

अरविंद बाबू के संपर्क में आकर पिताजी ने वेदों का अध्ययन किया, उनके कुछ अंशों का तमिल में अनुवाद भी किया।

सन् 1910 में पिताजी ने साहित्य रचना में अपना पूरा ध्यान और समय लगाना प्रारंभ किया। सन् 1912 का वर्ष उनके जीवन में बड़ा महत्त्व रखता है। उसी साल उन्होंने कई उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की।

पांडिचेरी प्रवास के दिनों में आर्थिक दृष्टि से उन्हें असह्य कष्ट झेलने पड़े। दुख की आँच में तप-तप कर उनकी कविता निखरती गई। उनके गीतों में प्राणो को स्पंदित करने वाला जो जोश और आकुलतापूर्ण भावुकता थी, वह पाठकों और श्रोताओं को मुग्ध कर देती थी।

गुनगुनाते हुए पिताजी को कमरे में चहलकदमी करते देखते ही पता लग जाता कि आज वे किसी नई रचना को जन्म देने वाले हैं। जब तक वह उनकी गंभीर वाणी में मुखरित न होती तब तक खाने-पीने की सुध-बुध ही उन्हें न रहती। ऐसे समय उन्हें एकांत ही प्रिय लगता। कविता को स्वर-ताल में बिठाने तक आराम न लेते। ज़ोर-ज़ोर से पैर पटकते, आँखे मूँदे, स्वरों की तान छेड़ते, चहलकदमी करते और मैं उन्हें मंत्रमुग्ध-सी देखती रहती।

पांडिचेरी के निकट एक सुंदर आम्रकुंज है, शांत और रमणीय। उस अमराई की सघन छाया में, पक्षीगण के कलरव गान के बीच ही 'कोयल का गीत' लिखा गया। पिताजी प्रकृति के उपासक थे, सौंदर्य प्रेमी थे। हरियाली से लहराते खेत, मंद पवन में झूमते वृक्ष, पंख फड़फड़ाते हुए उड़ते पक्षीगण, चटकती कलियाँ, खिलते फूल, उफनती लहरें, गरजता सागर—ये सब कवि के दिल को मोह लेते थे। वे अपने को भूल जाते और कविता मुखरित हो उठती थी।

एक दिन की बात है। मित्रों की मंडली जमी थी। व.वे.सु.अय्यर ने निराशा से पीड़ित स्वर में पूछा, "हम भारतीय कब तक यों बँधे रहेंगे?" पिताजी ने उत्तर दिया,

बंदी हैं हम—सहते रहेंगे, समय बदलेगा,<br>
देखेंगे, धर्म की विजय पताका फहराते,<br>
धनुष है एक! भाई ! गांडीव है उसका नाम।<br>
(यह 'पांचाली शपथम्' में अर्जुन का कथन था।)

पूज्य व. वे. सु. अय्यर को जोशीले स्वर में बार-बार इसे दोहराते हुए मैंने

देखा और सुना है।

दरिद्रता, बीमारी, पारिवारिक कठिनाइयाँ, मानसिक वेदना आदि से पिताजी का दुर्बल शरीर जर्जर हो चुका था। फिर भी उनका मन स्वस्थ और स्फुलिंग के समान तेजस्वी था। उनकी 'भारत समुदायम्' शीर्षक कविता में ये पंक्तियाँ हैं :

> "यह देश तीस करोड़ आदमियों की सार्वजनिक संपत्ति है। इस पर सबका समान अधिकार है। हमारा यह समाज हमारी लोकतांत्रिक सत्ता दुनिया में निराली है। हम समस्त भारतीय एक कुल के हैं, एक जाति के हैं। यहाँ पर सबका स्थान समान है। मानव मूल्य सबका समान है। ऊँच-नीच कोई नहीं। हर भारतीय इस देश का राजा है, हाँ राजा है।"

पिताजी पर हमेशा सुधार की धुन सवार रहती थी। समाज के अर्थहीन जड़ बंधन से मानव को मुक्त करने के लिए वे अधीर थे। सामाजिक और जातीय बंधनों के विरोधी थे। धार्मिक कट्टरता, संकुचित जातीय भावना, बाह्याचार आदि का ज़ोरदार खंडन किया करते थे। उन्हें न समाज का डर था, न व्यक्तियों का। वे बिलकुल आज़ाद विचारों के आज़ाद पुरुष थे।

उन दिनों पत्नी को साथ लेकर बाहर जाने की हिम्मत किसी में न थी। मगर वे माँ के गले में हाथ डालकर उसे बाहर घुमाने ले जाया करते थे। गाँव वाले इस व्यवहार को देखकर झल्ला उठते।

पिताजी सर्वधर्म समानता को मानने वाले थे। भिन्न-भिन्न जातिवालों, नीचे कहे जाने वालों के साथ बैठकर उन्होंने भोजन किया। इस बात को लेकर भारी हंगामा खड़ा हो गया। पांडिचेरी में उन्होंने एक हरिजन युवक का उपनयन कराया। वे बाल-विवाह के विरुद्ध थे। नारी जागरण, नारियों की उन्नति तथा स्त्री-शिक्षा के वे पक्षपाती थे। वे हम बहनों को स्वाभिमानी, निर्भीक और साहसी बने रहने का बराबर उपदेश दिया करते थे।

रोबीला चेहरा। तनी हुई मूँछें, दुबला-पतला छरहरा शरीर। सिकुड़ी हुई छाती। साँवला रंग। चौड़ा ललाट। ललाट के मध्य कुंकुम का बड़ा तिलक। घनी भृकुटियाँ, तीखी नाक, पिचके गाल। सिर पर पगड़ी। खुली शर्ट, उसके ऊपर ढीला कोट। उमंगों से भरा हृदय। मस्त चालें। सरल और सीधा व्यवहार। उनकी आँखें इतनी चमकीली और आकर्षक थीं कि देखने वाले मुग्ध हो जाते। उनकी क्षीण काया को देखते लगता था कि क्या इसी व्यक्ति में इतना तेज और सशक्त कवि की प्रतिभा है?

**—अनु. सरस्वती रामनाथ**

## प्रश्न

1. सुब्रह्मण्य भारती को बचपन में किन कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा?
2. लोगों की राय में वे बैरागी क्यों थे?
3. स्कूल के तमिल पंडित ने उन्हें किस आशय से 'कालमेघ' कहा था?
4. 'भारती केवल कवि ही नहीं, बल्कि क्रांतिकारी और महान देशभक्त भी थे।' उनके जीवन से कुछ उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।
5. सुब्रह्मण्य भारती के व्यक्तित्व के निम्नलिखित पहलुओं पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :
   (क) उनका समाज सुधारक रूप
   (ख) उनकी निर्भीकता
6. भारती के रूप और आकार का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
7. भारती की काव्य-रुचि और काव्य-प्रतिभा पर प्रकाश डालिए।

# 4. पिस्ते-बादाम

"दादी माँ, यह देखो", श्याम दौड़ता-दौड़ता अपनी दादी माँ के पास आया और बोला।

"क्या है?" दादी माँ काम में लगी थी, उसने उसकी ओर देखे बिना ही झल्लाकर पूछा।

"देखो ना, मैं क्या खा रहा हूँ", श्याम ने मुट्ठी खोलते हुए कहा।

"क्या खा रहा है, रे?" दादी माँ ने फिर पूछा।

"देखो ना, मेरे दोस्त सुनील की माँ ने दिए हैं", श्याम ने उत्तर दिया।

"अरे, यह तो पिस्ते-बादाम हैं!" दादी माँ ने हैरत से कहा--"उसके यहाँ ये कहाँ से आए?"

श्याम बोला—"सुनील का बड़ा भाई दुबई से आया है ना ! वह ले आया है। बहुत-सा सामान लाया है। सुनील कह रहा था, हम यह सामान बेचेंगे और खूब पैसा कमाएँगे।"

तब तक श्याम का छोटा भाई रमेश और छोटी बहन मोहिनी, दोनों भीतर के कमरे से बाहर आ गए थे। मोहिनी ने पूछा, "श्याम, तुम्हारे पास क्या है? मुझे भी खिलाओ ना !"

श्याम ने मुँह चिढ़ाते हुए कहा—"मुझे भी खिलाओ ना! चल हट तू मुझे कुछ खिलाती है।"

दादी माँ ने उसे डाँटते हुए कहा, "क्यों नहीं इन सबको खिलाते? दोनों को दो-दो पिस्ते-बादाम दो।"

श्याम ने रूठी-सी आवाज़ में कहा, "ये हैं हीं कितने जो दोनों को भी खिलाऊँ?"

"देखें, कितने हैं?" रमेश नें कुछ सोच-समझ कर प्रस्ताव रखा।

श्याम ने जैसे ही अपनी मुट्ठी खोली, रमेश ने झपटकर दो-चार पिस्ते-बादाम हथिया लिए और दो-चार पिस्ते-बादाम नीचे गिर गए, वे मोहिनी ने लपक कर ले लिए।



रमेश ने मुफ़्त में हाथ लगे पिस्ते-बादाम जल्दी से अपने मुँह में डाल लिए, परंतु मोहिनी ऐसा न कर सकी। श्याम ने उसे एक घूँसा रसीद कर कहा,"क्यों री, तू क्यों झपट्टा मारती है?"

मोहिनी ने उसे फटकारते हुए कहा—"मैंने क्या झपट्टा मारा? मुझे तो ये भगवान की धरती से मिले।"

"भगवान की धरती से मिले!" श्याम ने उसकी चोटी पकड़ ली और कहा, "बड़ी आई है भगवान की धरती से उठाने वाली! इधर वापस कर मुझे!" लेकिन मोहिनी ने भी वे पिस्ते-बादाम जल्दी से अपने मुँह में डाल लिए। इतने में रमेश ने थू-थू कर पिस्ते-बादाम थूक दिए। वह बोला, "ये तो बड़े कड़वे हैं। मोहिनी, ये ज़हर जैसे कड़वे हैं, तुम नहीं खाना।"

मोहिनी ने आँखे मटकाते हुए कहा, "नहीं, नहीं, मेरे वाले तो बड़े मीठे हैं।"

रमेश ने दादी माँ से कहा, "माँ, मुझे एक चवन्नी दो, मैं भी लाऊँगा।"

दादी माँ ने कहा, "पागल हुए हो क्या? चवन्नी के पिस्ते-बादाम नहीं मिलते। एक चवन्नी में एक ही बादाम मिलेगा।"

"अच्छा?" बच्चों की एक साथ चीख-सी निकल पड़ी।

"और नहीं तो क्या? पिस्ते-बादाम सस्ते हैं क्या? सौ-सवा-सौ रुपए के एक किलो होंगे पिस्ते, और अस्सी रुपए के एक किलो से क्या कम होंगे बादाम। हम गरीब लोगों को भगवान की ये चीजें खाना मना है," दादी माँ ने उन्हें समझाया।

"दादी माँ, मैंने ये पिस्ते-बादाम कभी देखे तक नहीं थे। आज ही देखे हैं," मोहिनी ने अजीब से स्वर में कहा।

"बेटी, तुम देखती कैसे? घर में ये चीज़ें आएँ तो तुम देखो। आज पहले का-सा ज़माना तो नहीं।" और दादी माँ थैले में से सब्जियाँ निकालने लगी।

रमेश ने दादी माँ से पूछा, "दादी माँ, तुमने कभी पिस्ते-बादाम खाए हैं?"

दादी माँ ने उत्तर दिया, "खाए क्यों नहीं हैं?"

"तो तुमने हमें क्यों नहीं खिलाए?"

"अरे, अब यहाँ थोड़े ही खाए हैं। सिंध में खाए थे, उसके बाद तो...... दादी माँ , उदास हो गई।

श्याम ने पूछा, "यह सिंध क्या है? कहाँ है?"

दादी माँ ने कहा, "सिंध हमारा वतन था। वह यहाँ से दो दिन के फ़ासले पर तो जरूर होगा।"

रमेश ने पूछा, "हम वहाँ चलकर क्यों नहीं रहते?"

दादी माँ ने उसे समझाते हुए कहा, "नहीं बेटे, हम अब वहाँ जाकर नहीं रह सकते। ...... वहाँ के लोगों ने हमें वहाँ से भगा दिया था। अब सिंध पाकिस्तान में है।"

मोहिनी ने जिज्ञासा व्यक्त की, "दादी माँ, पहले तुम लोग वहाँ रहते थे?"

दादी माँ ने कहा, "हाँ, बेटी, हम लोग कराची में रहते थे।"

श्याम को कुछ याद आ गया था। वह बोला, "हाँ, मैंने भूगोल की किताब में पढ़ा है कि कराची पाक़िस्तान का बड़ा बंदरगाह है।"

"होगा, बेटे," दादी माँ ने उदासीन स्वर में उत्तर दिया।

"दादी माँ, वहाँ के लोगों ने तुम को वहाँ से क्यों भगा दिया था?" रमेश ने जानना चाहा।

"न जाने हमारे नेता लोग कैसे थे, जिन्होंने हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बनाया और हम लोगों को यहाँ आना पड़ा। हम अपने ही घर में बेघर हो गए।" दादी माँ की उदासी बढ़ गई थी।

मोहिनी ने दादी माँ के गले में बाँहें डालकर पूछा, "दादी माँ, फिर तुम लोग सिंध छोड़कर कहाँ गए?"

गले से मोहिनी की बाँहें हटाते हुए दादी माँ ने कहा, "कहाँ जाते? यहाँ



हिंदुस्तान में आ गए। जब से सिंध छोड़ा है, हम क्या कहीं आराम से बस पाए हैं? मुल्क तो क्या, रोज़ी-रोज़गार भी गया।"

मोहिनी ने पूछा—"दादी माँ, तुम वहाँ क्या करती थीं?"

दादी माँ को गुस्सा आ गया। वह बोली, "खाक छानती थी। अरे, मैं वहाँ क्या करती? तुम सोचती हो, मैं भी शायद तुम्हारी मम्मी की तरह नौकरी करती थी। अरे, उन दिनों औरतें नौकरी नहीं करती थीं .......। मेरे पिताजी की मिठाई की दुकान थी। हमारी दुकान का पिस्ते-बादाम का हलवा बड़ा ही मशहूर था। मुट्ठियाँ भर-भरकर पिस्ते-बादाम खाते थे हम लोग।" मोहिनी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "यहाँ बिचारे बच्चों ने ये आज से पहले देखे तक नहीं।"

श्याम ने पूछा, "परंतु दादी माँ, सुनील के यहाँ तो ढेर सारे पिस्ते-बादाम हैं। वे कहाँ से लाते हैं?"

दादी माँ ने ठंडी साँस छोड़कर कहा, "वे अमीर हैं। सुनील के भाई दुबई में कमाते हैं।"

छोटी मोहिनी ने फिर पूछा, "हम अमीर क्यों नहीं हैं?"

अब दादी माँ उन सब को कैसे समझाए कि वे गरीब क्यों हैं। उसने इतना-भर कहा, "बेटी, हम लोग भी सिंध में बड़े सुखी थे।"

दादी माँ सिंध को अभी भुला नहीं पाई हैं। उसने आगे कहा, "यहाँ हमारी किस्मत अभी तक जागी नहीं है। तुम लोग बड़े होकर खूब पैसा कमाना। फिर तो हम भी अमीर हो जाएँगे।"

रमेश ने अपनी छाती ठोंककर कहा, "हाँ, दादी माँ, मैं दुबई जाऊँगा, बहुत सारे पिस्ते-बादाम ले आऊँगा।"

श्याम की आँखों में भी चमक आ गई थी। वह बोला, "मैं भी विदेश जाकर खूब कमाकर आऊँगा और फिर सुनील के भाई की तरह जेब में नोट डालकर घूमूँगा।"

मोहिनी ने कहा, "फिर हम भी इन गुजराती भाइयों की तरह मोटर-कार में घूमेंगे। ये भी बड़े ही अमीर हैं।" मेरी सहेली ने मुझसे एक दिन कहा, "नया फ्रॉक पहनकर आओ तो तुम्हें कार में बिठाऊँ।" लेकिन मेरे पास तो नया फ्रॉक है ही नहीं। सभी तो पुराने हैं। दादी माँ, यह देखो, यह भी यहाँ से फट गया है। उसकी आवाज़ में दुख भरा था।

दादी माँ भी बच्चों की बातें सुनकर दुखी हो उठी लेकिन वह अपने दुख को छिपाती हुई बोली, "अच्छा....... अच्छा, अब तुम सब जाओ और अपनी-अपनी किताबें लेकर पढ़ो। जब खूब पढ़-लिखकर इम्तहान पास करोगे, तभी विदेश जा सकोगे।"

परंतु पढ़ाई के संबंध में दादी माँ की यह बात बच्चों की समझ में नहीं आई। सुनील पढ़ाई में श्याम से भी कहीं ज़्यादा कमज़ोर है। फिर भी वह कहता है



कि वह विदेश जाएगा। लेकिन वे चुप रहे, बोले नहीं।

रविवार का दिन था। बच्चे घर पर ही थे। उनकी मम्मी सुबह से ही घर के काम-काज में व्यस्त थीं। पूरे हफ़्ते का बचा-खुचा काम रविवार की छुट्टी के दिन करना पड़ता है। सुबह को दादी माँ ने नाश्ता तैयार किया तो मम्मी ने बरतन झाड़ू का काम निबटाकर कपड़े धोना शुरू किया। दादी माँ थैले में से सब्जियाँ निकालकर दोपहर के खाने की तैयारी में लगने को थी कि उसे बच्चों ने आकर घेर लिया।

कमला कपड़े धोने के काम से फ़ारिग हुई तो उसने देखा, बच्चे चुपचाप बैठे पढ़ाई कर रहे थे। वैसे तो छुट्टी के दिन बड़ा ही ऊधम मचाते हैं। उसने हैरत से पूछा, "आज ये शैतान कैसे चुपचाप बैठे हैं?"

मोहिनी ने आहिस्ते से कहा; "मम्मी, दादी माँ कहती हैं कि अगर हम पढ़ेंगे तो बड़े होकर अमीर बनेंगे।"

कमला को हँसी आ गई।

रमेश ने मम्मी से पूछा, "तुमने कभी पिस्ते-बादाम खाए हैं?"

कमला को और भी ज़्यादा अचरज हुआ। बोली, "क्यों पूछते हो? पिस्ते-बादाम, हाँ, शायद खाए हैं।"

श्याम ने कहा, "शायद नहीं, पक्की बताओ।"

कमला ने कहा, "बचपन में शायद दो-तीन बार पिताजी ने पिस्ते-बादाम खाने को दिए थे ......।"

रमेश ने बीच में ही कहा, "कहाँ? सिंध में?"

कमला को फिर हँसी आ गई। वह बोली, "अरे मूर्ख, मैं तो यहाँ हिंदुस्तान में जन्मी थी, मैंने सिंध नहीं देखा है। ......लेकिन तुम आज पिस्ते-बादाम का यह किस्सा कहाँ से ले बैठे?"

श्याम ने बचाए हुए दो-तीन पिस्ते-बादाम अपनी जेब से निकालकर मम्मी को दिखाए। कहा, "देखो, मेरे दोस्त सुनील की माँ ने दिए हैं। दो-तीन मोहिनी ले गई, ढेर सारे बदमाश रमेश ले गया।"

कमला ने गुस्से में आकर कहा, "बदमाश, ऐसे कैसे बोलते हो?"

दादी माँ ने कमला को बीच में ही टोककर कहा, "कमला, तुम भी तो ऐसे ही बोलती हो। तुमने भी तो .......।"

सभी हँसने लगे।

रमेश के दिमाग में अभी तक यह बात थी कि उसके पिस्ते-बादाम कड़वे निकले थे। उसने कहा, "मम्मी, हमें पिस्ते-बादाम लेकर दो।"

मम्मी के उत्तर देने से पहले ही दादी माँ बोली, "अच्छा बेटे! कमला, जब तुम्हें इस महीने तनख्वाह मिलेगी, तो तुम बच्चों के लिए दस रुपए के पिस्ते-बादाम खरीद कर लाना।"

कमला असमंजस में पड़ गई। बोली, "लेकिन माँ, अभी तो कर्ज़ की कई किस्तें देना बाकी हैं। ऐसे तो घर-खर्च के लिए दस-रुपए कम हो जाएँगे।"

दादी माँ ने कहा, "अरी बिटिया, जो दस रुपए तुम मुझे हर महीने दिया करती हो, इस बार न देना।...... बच्चों के लिए पिस्ते-बादाम ज़रूर ले आना।"

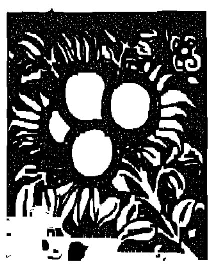
बच्चे खुशी के मारे झूम उठे। कमला ने उन्हें डाँटकर कहा, "अच्छा, इस बार ले आऊँगी। लेकिन आगे कभी ऐसी महँगी चीज़ें लाने के लिए ज़िद मत करना। ...... अब उठो, नहा-धो लो, तो मैं तुम्हारे लिए खाना बना दूँ। तुम्हारे डैडी भी दुकान से आते ही होंगे।"

दादी माँ के चेहरे पर तो मुसकराहट थी, पर आँखों में आँसू थे।

—अनु. मोतीलाल जोतवाणी

# प्रश्न

1. श्याम को पिस्ते-बादाम सुनील की माँ ने दिए हैं, यह जानकर दादी माँ को हैरानी क्यों हुई?
2. 'एक चवन्नी में एक ही बादाम मिलेगा' दादी माँ से यह सुनकर बच्चों की चीख-सी क्यों निकल गई?
3. दादी माँ ने अपने परिवार की गरीबी और दुर्दशा का कारण क्या बताया?
4. छुट्टी के दिन ऊधम मचाने वाले बच्चे अकस्मात पढ़ाई में क्यों जुट गए?
5. 'दादी माँ के चेहरे पर तो मुसकराहट थी, पर आँखों में आँसू थे।' इस कथन का आशय समझाइए।



# 5. जब मैंने नेकटाई बाँधी

कितना अलबेला नाम है 'नेकटाई'। एक पेंच दाईं ओर और दूसरा बाईं ओर। एक ऊपर से और फिर यों। लीजिए, नेकटाई की गाँठ तैयार हो गई। शीशे में मुँह देखिए, गले का नक्शा एकदम बदला हुआ पाएँगे। गले के हुस्न में जिस टेंटुए ने बदमज़गी पैदा कर रखी थी, वही गला एक कुशल माली के सधे हाथों से गुलदस्ते की तरह अब शोभायमान होने लगा है। सच भी यही है कि जब तक व्यक्ति टाई बाँधे होता है तब तक उसमें कुछ अंतर रहता है। उसे अपना व्यक्तित्व, अपने आस-पास का सारा संसार सुंदर और लुभावना लगने लगता है। जेब में चाहे फूटी कौड़ी भी न हो पर यह लटकती झूलती उस पर भी परदा डाल देती है। देखने वाले समझते हैं, कोई पैसेवाला होगा। मगर टाईधारी का ही दिल जानता है कि उस वक्त उस पर क्या गुज़रती है जब पान खाने या खिलाने को उसकी जेब से दस पैसे भी



नहीं निकलते। या फिर किसी खोमचेवाले से अनजाने में टकराने पर पुराने कर्ज को चुकता करने के प्रश्न को लेकर उसके इर्द-गिर्द अच्छी-खासी भीड़ जमा हो जाती है और हजरत को चेहरे पर बेचारगी के भाव लिए बगलें झाँकनी पड़ती हैं।

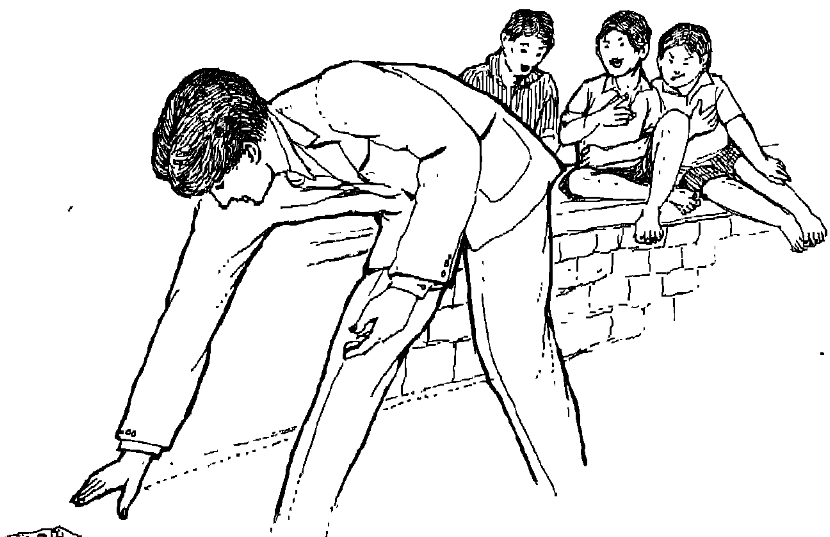
मेरी भी एक दिन इच्छा हुई कि टाई बाँध लूँ। बाँधी, मगर एक दिन के लिए। एक दिन के लिए क्यों? आप सुनेंगे तो मुझ पर हँस देंगे। दरअसल, यह किस्सा ही कुछ ऐसा है। खैर, आपके सामने अपना दिल खोलकर रख देने में मुझे कोई ऐब नहीं दिखता। लीजिए, सुनिए :

दफ़्तर में उस दिन बैठे-बिठाए विचार जागा, मैं टाई क्यों नहीं बाँधता? जब मेरे वे मित्र जो मुझसे कम तनख्वाह पाते हैं, टाई बाँधते हैं तो मेरा ही गला खाली क्यों? विचार काफी अंदर से जागा था और मैंने अंदर ही अंदर फैसला किया कि अब मैं भी आइंदा से टाई बाँधकर दफ़्तर आया करूँगा।

दूसरे दिन सुबह मैंने धोबी के यहाँ से आए कपड़ों में से एक कमीज़ छाँट ली और उसे पहन लिया। फिर नेकटाई बाँधी और ड्राइक्लीन करवाया सूट ऊपर से पहनकर चल दिया दफ़्तर की ओर। रास्ते-भर हयाओ-शर्म से रह-रहकर चलता रहा, क्योंकि जो भी कोई जान-पहचान का मिल जाता, वही पहले मेरी टाई की ओर देखता और फिर एक झूठी-सी मुसकान होंठों पर बिखेरकर कहने लगता, "अच्छा ठीक! बहुत ठीक!!" मैं मन ही मन सोचने लगा, क्या सचमुच मैंने यह ठीक किया है या ये लोग यों ही कह रहे हैं। तभी दूसरे क्षण उन दोस्तों की याद आती जो मुझसे कम तनख्वाह पाते, फिर शान से रंग-बिरंगी टाइयाँ बाँधे दफ़्तर आते। इस बात से मेरा कुछ धीरज बँधा और मैं पूरे दम-खम के साथ इधर-उधर नजरें दौड़ाता हुआ आगे बढ़ने लगा।

तहदार जुल्फों में गज़ब की कंघी की हुई थी, पतलून की क्रीज़ एकदम कड़क

और बूट पालिश से चमचमा रहे थे। बड़े मजे से चला जा रहा था मैं। जब बड़ियार के मोड़ पर पहुँचा तो यहाँ मेरी नज़रें सड़क के दाएँ छोर की नाली से जा टकराईं। दिल बल्लियों उछल पड़ा। नाली के पास दो रुपए का नोट पड़ा हुआ था। हाय री तृष्णा! नोट की शक्ल देखते ही मेरे दिलो-दिमाग पर गज़ब की बेचैनी हावी हो गई। जो टाँगें अब तक मौज़ में चल रही थीं उनमें कुदरती ब्रेक-सा लग गया। गरदन को दाएँ-बाएँ घुमाया तो हरएक को अपने-अपने काम में मशगूल पाया। सोचने लगा, नोट को उठाना ठीक रहेगा या नहीं। जब किसी की इस पर नज़र ही नहीं है तो फिर इसे उठाने में हर्ज़ ही क्या है? उस समय नोट उठा सकने का सुभीता न देखकर मैं दो-चार कदम आगे बढ़ गया और फिर दोबारा पीछे मुड़ आया। इस बीच यह ख्याल बार-बार आता रहा कि टाई पहने हूँ, नोट को उठाना ठीक रहेगा या नहीं। एक बार फिर नोट के ऊपर नज़रें जमाईं। लगा,



वह कातर दृष्टि से मेरी ही ओर देखकर कह रहा हो, "मैं तुम्हारे ही इंतज़ार में था, मुझे उठाते क्यों नहीं हो!"

जेब से मुड़ा एक कागज़ निकालकर नोट के पास मैंने गिरा दिया। इधर-उधर देखकर नोट तक हाथ को पहुँचाने का उपक्रम करने लगा। दिल गज़-गज़ भर उछल रहा था। सिर से पाँव तक पूरा शरीर ठंडा पड़ गया। टाँगें काँपने लगीं और माथे पर पसीना छूट आया। मेरा नोट को छूना ही था कि चारों ओर से हँसी के फुहारे फूट पड़े। मुड़कर देखा, सारे दुकानवाले छोटे-छोटे बच्चों के संग मारे हँसी के दुहरे हुए जा रहे थे। मेरा क्या हाल हुआ, मत पूछिए। आँखों के सामने अँधेरा छा गया, दिन में ही तारे नज़र आने लगे। हाथ-पाँव ऐंठ से गए। चेहरे पर जैसे मानो हल्दी पुत गई। कानों ने आगे सुनने से इनकार कर दिया। नोट को उँगलियों में थामें हुए उसी स्थान पर जैसे जड़-सा गया। सोचा—या इलाही, यह कौन-सी नई बला आ पड़ी। इतने में उन लोगों में से एक दुकानदार, जो शायद मुझे जानता था, मेरे पास आकर खड़ा हो गया और हँसते हुए कहने लगा, "माफ़ करना साहब, आपको तकलीफ़ हुई। इन बच्चों को भी जाने कौन-कौन से मजाक सूझते हैं।" यह कहकर उसने मेरी उँगलियों में से उस दो रुपए के नोट को बड़ी बेमुरौवती के साथ झटक लिया।

मैं गाय की तरह उसके मुँह की ओर देखता रह गया। मारे हँसी के वे लोग अब भी दुहरे हुए जा रहे थे। मुझे दयनीय अवस्था में देखकर वह दुकानदार फिर बोला, "हम सचमुच बहुत शर्मिंदा हैं। हमने सोचा भी न था कि आप जैसे सूटेड-बूटेड जेंटलमैन की निगाह नाली के इस किनारे तक भी जा सकती है। सॉरी, वेरी सॉरी।"

मैं जैसे गहरी नींद से जाग पड़ा, "कोई बात नहीं, कोई बात नहीं", घबराई आवाज़ में मैं केवल इतना ही कह सका। और जब मैं वहाँ से खिसकने को

हुआ तो एक बार फिर ठहाके गूँजे, सीटियाँ बजीं। दो छोकरे चिल्ला-चिल्लाकर आवाजें कसने लगे "जेंटलमैन हाय-हाय, जेंटलमैन हाय-हाय! नेकटाई और सूट हाय-हाय। नेकटाई और .........।"

मैंने खुद को खूब कोसा। अच्छा-भला चला जा रहा था, इन दो रुपयों को देख क्यों लालच में लपक पड़ा। जितनी भी गालियाँ मुझे याद थीं, उनमें से कुछ खुद को दीं और कुछ उन लोगों को जिन्होंने मेरी यह गत बनाई थी। खुद के साथ मैं इस कदर उलझ गया कि मुझे लगने लगा कि राह चलते लोग मेरी ओर ही देखते जा रहे हैं। मुझे जाना था गावक दल से बाईं ओर और मैं सीधा लालचौक पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर राहत की एक साँस ली। खड़े-खड़े शरबत के दो गिलास गटक लिए मगर फिर भी अंदर की लपट शांत न हुई। खैर, जैसे-तैसे दफ़्तर पहुँच गया।

"हाँ-हाँ, आज हमसे कहाँ बोलोगे!" एक मित्र ने भिड़ते ही चुटकी ली। "बाइ-गॉड, इस टाई में तो आज हीरो लग रहे हो!" यह बात दूसरे ने कही। मैं खामोश हो कभी एक की ओर देखता तो कभी दूसरे की ओर। "अरे भाई, कुछ बोलो भी तो, हम नाखुश थोड़े ही हुए हैं। गाज गिरे जलनेवालों पर", पहलेवाले ने मुझे मूड में लाने की गरज़ से कहा।

"लो यार, अब ज़्यादा बातें ही क्या करनी हैं", दूसरे ने बीच में ही बात काटी, "देख नहीं रहे—नई टाई, नई अदा, नया रूप, नई फ़िज़ा। इन सबके लिए फॉरमैलिटी अब केंटीन में ही पूरी होगी। चलो जल्दी, बड़े साहब आते ही होंगे।"

मैं सुलग रहा था अंदर ही अंदर। मेरी रुखाई की ओर ध्यान न देकर वे मेरा हाथ पकड़कर मुझे केंटीन तक ले जाने में जैसे-तैसे सफल हो गए। जो भी उनकी इच्छा हुई, हँसते-बतियाते खा-पी गए। मैं भला क्या खाता! मेरे गले के नीचे जैसे किसी ने ज़ोर से गाँठ बाँध दी थी। एक-एक घूँट चाय का लेता

तो बड़ियार का एक-एक दृश्य आँखों के सामने सजीव हो उठता।

सारा दिन दफ़्तर में बेचैनी से गुज़रा। पानी से बाहर निकली 'मछली' की तरह तड़पता रहा। पाँच बजते ही जब सभी अपने-अपने घरों की ओर चल दिए तो मुझे ख्याल आया कि बड़ियार के उस मोड़ पर यदि सुबह के उन लोगों में से किसी एक से भी सामना हुआ तो मेरी क्या हालत होगी! क्यों न दो-तीन घंटे अमीराकदल की तरफ़ बिता आऊँ। तब तक अँधेरा भी हो जाएगा और फिर बेखटके घर चला जाऊँगा। पर, निरुद्देश्य डोलने से तो अच्छा यही है कि अंग्रेज़ी फ़िल्म देख ली जाए। हाँ, आइडिया बुरा नहीं है। मज़े में फ़िल्म देख लेंगे और तब तक अँधेरा भी खूब घिर आएगा, फिर घर। शो शुरू होने के टाइम तक मैंने लालचौक के दो राउंड लगा लिए। ठीक पौने सात बजे सिनेमा-हॉल की घंटी बजी। टिकट-घर की खिड़की खुली। मैंने आश्वस्त होकर अंदर की जेब में हाथ डाला—'बाप रे!' मेरे मुँह से हलकी-सी चीख निकल पड़ी। हाथ जेब में ही रह गया। मेरी चीख हवा में घुल चुकी थी। दाएँ-बाएँ देखा, शुक्र है जो किसी ने मेरी आवाज़ सुनी नहीं थी। सभी टिकटें लेने में लगे हुए थे। जेब से हाथ निकाला और बंद मुट्ठी खोली—बस, दो चवन्नियाँ। सुबह घर से तो पाँच रुपए का नोट लेकर चला था। साढ़े चार कहाँ गए?........ ओह! ध्यान आया, मैं भी कैसा भुलक्कड़ हूँ। सुबह शरबत के जो दो गिलास पी डाले थे उसके पैसे दुकानदार लेता नहीं क्या? एक रुपया उसका और साढ़े तीन रुपए केंटीनवाला खसोट गया। इतने में सिनेमा-हॉल ही तीसरी घंटी भी बज उठी। दरवाज़ों पर काले परदे तान दिए गए, और फ़िल्म चालू हो गई। क्यों न अठन्नी-क्लास की ही एक टिकट खरीदी जाए, इस भीड़ में मुझे देखेगा भी कौन? तभी ख्याल आया, मगर जो लोग मुझे अठन्नीवाले क्लास में टाई बाँधे देखेंगे, वे भला क्या सोचेंगे। नहीं-नहीं, यह तो जान-बूझकर अपनी इंसल्ट करवानी है।

हाँ, एक तरीका है। क्यों न इस टाई को खोलकर जेब के हवाले कर दिया जाए। फिर कोई बात नहीं, अठन्नी वाला क्लास हो या अपर क्लास, कोई कुछ नहीं कह सकता। नज़र बचाकर मैं सिनेमा-हॉल के पीछे की ओर गया। जल्दी से टाई खोल दी और उसे पैंट की जेब में डाल दिया। टिकट ले लेने के बाद हॉल में प्रवेश किया। यहाँ भी मेरे साथ एक ज़बरदस्त मज़ाक हुआ। गेट-कीपर ने बताया कि इस क्लास में एक भी सीट खाली नहीं है, बैठना हो तो इन सीढ़ियों पर बैठ जाओ वरना अपर की टिकट ले आओ। बचपन में कई बार अठन्नी वाले क्लास में फ़िल्म देखने का मौका मिला था मगर एक किनारे पर सीढ़ियों पर बैठकर फ़िल्म देखने का यह मेरे लिए पहला मौका था। स्क्रीन पर नज़रें जमाईं। यह क्या! आदमियों की खोपड़ियाँ खरबूजों जैसी! कहीं मेरी आँखों की रोशनी में कुछ फ़र्क तो नहीं आया है? दो-तीन बार पलकें झपकाईं। इस बार कुछ और ही नक्शा दिखा—भागती मोटर मुझे लंबी बस जैसी दिखाई देती, पेड़ सिर के बल झुके हुए नज़र आते ........। खुद पर हँसी भी आ रही थी और रोना भी।

खैर, जैसे-तैसे मैंने अपने दो सवा-दो घंटे बिता ही दिए। शो समाप्त हुआ और एक ही छलाँग में तीनों सीढ़ियाँ पार करके मैंने बाहर आकर दम लिया। जेब में हाथ डाला, टाई नदारद। जेबों में टाई तलाश ही रहा था कि दो-तीन मित्र इकट्ठे हो गए। ये लोग फ़िल्म के बारे में बहस करने लगे। एक कहने लगा, अच्छी थी, तो दूसरा बोला, साधारण ही थी। मैं यों ही 'हाँ-हूँ' करता रहा। अंदर ही अंदर मैं बहुत परेशान हो रहा था, पर कहता किससे? तभी पीछे से कुछ आवाज़ें मेरे कानों में पड़ीं। मैंने पलटकर देखा, ठिगने कद का एक व्यक्ति अपने साथी से कह रहा था, "यार, कुछ और मिला होता। यह टाई हमारे क्या काम आएगी? लगता है, आज कोई दरिद्र टाई बाँध कर फ़िल्म देखने आया

था। खैर, कोई बात नहीं। हमने भी घर पर एक विलायती पिल्ला पाल रखा है, उसके पट्टे के काम आएगी।" यह कहते हुए वे दोनों साइकिल पर सवार होकर गेट की ओर चल दिए। मैं उन्हें तब तक देखता रहा जब तक कि वे मेरी दृष्टि से ओझल न हुए।

**—अनु. शिबन कृष्ण रैणा**

## प्रश्न

1. लेखक को नेकटाई बाँधने की इच्छा क्यों हुई और उसने उसका क्या औचित्य निकाला?
2. 'जेब में चाहे फूटी कौड़ी न हो, पर यह लटकती झूल उस पर भी परदा डाल देती है।' इस कथन का आशय स्पष्ट कीजिए?
3. नाली के पास पड़े दो रुपए के नोट को देखकर लेखक ने उसके पास अपनी जेब से कागज़ निकालकर क्यों गिराया?
4. सिनेमा देखने से पहले लेखक ने नेकटाई खोलकर अपनी जेब में क्यों डाल ली?
5. लेखक केवल एक ही दिन टाई क्यों बाँध पाया?

# 6. पीढ़ी-दर-पीढ़ी

चीरफाड़ से पहले बेचारे मेंढक ने असहाय दृष्टि से एक बार सब लड़कों को घूर कर देखा—गोल-गोल अपनी आँखें घुमाते हुए। कातर नेत्रों की गहराइयों में कोई अज्ञात-सा डर छिपा था। फटी-फटी वे आँखें मानों कहीं अतीत से ताक रही थीं। पर अचरज की बात यह थी कि मंडूक-नयनों की कोरों से सद्भाव और जागृति की हलकी-सी झलक टपकती नज़र आ रही थी।

इस घटना को करीब-करीब पचास साल हो गए हैं। मिडिल स्कूल में जीव-विज्ञान की कक्षा थी। विषय था—'मेंढक की शरीर-रचना'। बालन नंबियार मास्टर ने अपने विद्यार्थियों से कह रखा था, "लड़को, कहीं से ज़िंदा मेंढक पकड़ लाओ तो कल क्लास में मज़ा आ जाए। जितना मोटा हो, बेहतर होगा। वैसे मेंढक की तस्वीर दिखा कर भी शरीर-रचना समझा सकता हूँ, लेकिन मेंढक मिल जाए तो चीरफाड़ करके अंदर के अंगों की प्रत्यक्ष जानकारी पा सकते हैं।"

उस दिन स्कूल की घंटी बजते ही सारे बच्चे मेंढक के शिकार पर निकल पड़े। भूख और थकान की कोई चिंता नहीं थी। सिर पर एक ही धुन सवार थी—ज़िंदा मेंढक। ताल-तलैया, नहर-नाले, खेतों की मेंड़, सभी तरह के जलाशयों पर लड़कों की चहल-पहल और उछल-कूद की धूम मच गई। ज़िंदा मेंढक पकड़

लाने की होड़-सी लग गई। कइयों को मेंढक मिल गए, पर छोटे-छोटे। कुछ लड़कों को मोटे मेंढक ज़रूर मिले, लेकिन उनकी टाँगें गायब थीं। मेंढक पकड़ने वालों ने टाँगें काट लेने के बाद उन्हें जीने के लिए छोड़ रखा था—दयापूर्वक। सबसे तगड़ा मेंढक मिला था गोपिकुट्टन को। वाकई वह मेंढक मोटा-तगड़ा था, खूब भरा-पूरा और टाँगें ठीक-ठाक। नंबियार मास्टर ने चीरने के लिए उसी मेंढक को चुना।

स्टाफ़ रूम से एक गत्ता लाया गया। मेंढक को उस पर चित्त लिटाया गया। अगली पिछली टाँगें कस कर खींची गईं। फिर गाड़ी गईं उन पर छोटी-छोटी कीलें—चारों टाँगों पर। मेंढक ने तब हरे रंग की अपनी गोल आँखे घुमाते हुए लड़कों को एक बार देखा था। क्लास में उस समय जलसे का-सा माहौल बन गया था।



बीच में दो-तीन बार गोपिकुट्टन मेंढक को पकड़ने की रोमांचक कथा बता चुका था कि मैंने स्कूल के तालाब से इतना तगड़ा मेंढक कैसे पकड़ा और उसे थैली में कैसे बंद कर पाया। बड़े तड़के वह स्कूल पहुँचा और तालाब के किनारे दुबक कर बैठ गया। इस इंतज़ार में था कि कब कोई मेंढक तालाब से बाहर निकले। इधर मेंढक तालाब से फुदका, उधर कुट्टन ने लंबी छलाँग लगाई। अपनी धोती को फैला कर उस पर डाल दिया—जाल की तरह। तब

जाकर मेंढक उसमें फँसा। गोपिकुट्टन इतना तगड़ा मेंढक क्या लाया, एक ही दिन में स्कूल भर का 'हीरो' बन गया। सबसे बढ़कर अचरज की बात थी, बालन नंबियार द्वारा अभिनंदन। अंक देने में कंजूसी के लिए स्कूल भर में मशहूर नंबियार मास्टर ने सबके सामने गोपिकुट्टन की बड़ी तारीफ़ की। गर्व से सीना ताने खड़ा था कुट्टन। कुछ लड़के उससे जलने भी लगे थे।

चित्त लिटा कर मेंढक को कीलों से ठोंका गया। मेंढक के दिल की धड़कने तेज़ होने से उसका सीना उठता-गिरता नज़र आ रहा था। जल-थल दोनों में समान रूप से चलने में समर्थ उस'उभयजीवी'की चीरफाड़ करने का सौभाग्य मिला गोपिकुट्टन को।

"धीरे से ...... सँभल कर ........"

मास्टर जी हिदायतें दे रहे थे और कुट्टन ने मेंढक के उदर-भाग में ब्लेड से एक लंबी सीधी रेखा खींची, नीचे से ऊपर तक। चमड़ी जब दोनों तरफ़ से खुल गई तो शरीर का सारा रहस्य खुल गया। आंतरिक दुनिया को प्रत्यक्ष देख कर मास्टर जी के पढ़ाने की कला भी जीवंत हो उठी। लड़के अभी भी मेज़ को घेर कर खड़े थे। नंबियार मास्टर ने हुक्म दिया, "लड़को, अपनी-अपनी सीट पर चले जाओ।" बेंच पर बैठते हुए बच्चों को क्लास में मानव-शरीर चीर कर देखने जैसी रोमांचक अनुभूति हो रही थी। मास्टरजी सिर्फ़ गोपिकुट्टन को अपने पास खड़ा करके ऊँची आवाज़ में समझाने लगे' "श्रेणी के दोनों तरफ़ फैला हुआ यह जो देख रहे हो, यह तरुणास्थि है।..... यह पित्तवाहिनी है और यह ग्रसनी है " परस्पर गुँथी हुई ग्रंथियों और धमनियों को छोटी बेंत से हलके-से छूते हुए नंबियार मास्टर ने कहा।

मेंढक के शरीर में उस समय भी जीवन का स्पंदन था। दिल की धड़कनें चल रही थीं, आमाशय और मलाशय साफ़ नज़र आ रहे थे। बच्चों का कौतूहल अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था।



पीरियड खतम हो गया। सभी लड़कों में उत्साह की लहर-सी दौड़ रही थी। मास्टरजी के चेहरे पर आत्मसंतोष था, ईमानदारी से अपना काम करने की कृतार्थता झलक रही थी।

अंत में मास्टरजी ने गोपिकुट्टन से कहा, "अब सावधानी से इसका चिरा हुआ शरीर सी दो।" दो तीन लड़के कुट्टन की मदद के लिए आ जुटे। सूई-धागा लाया गया। तीनों मिलकर मेंढक का शरीर सीने लगे। बाकी सारे लड़के कौतूहल के साथ यह दृश्य देख रहे थे। मास्टरजी के मार्गदर्शन में काम संपन्न हुआ। उस समय भी मेंढक के शरीर में जीवन का स्पंदन शेष था। लड़के पूरे जोश में थे।

सिलाई का काम पूरा होने पर टाँगों से कीलें निकाली गईं। मेंढक को गत्ते पर औंधा रखा गया। बंधन-मुक्त मेंढक ने शायद आह भरी। शरीर उसका एक बार फड़क उठा। हलके स्वर में 'टर्र' बोला भी। बच्चों ने तालियाँ बजा कर अपनी खुशी ज़ाहिर की।

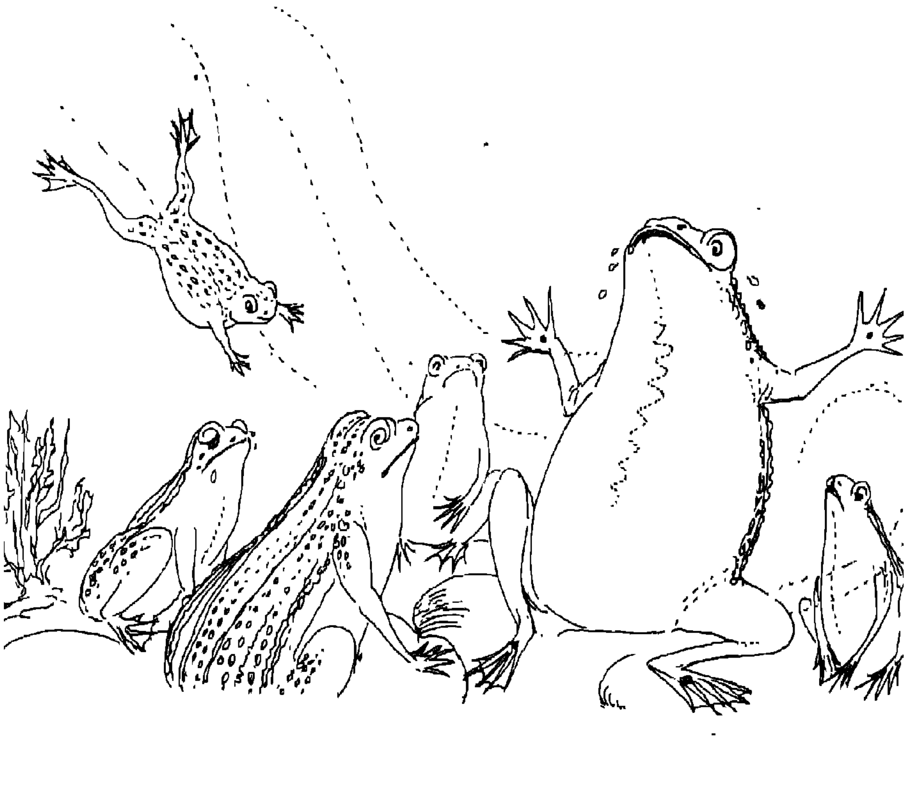
मास्टरजी ने आदेश दिया, "तालाब में छोड़ दो। ज़िंदा है तो जीने दो।"

लड़के क्लास से निकले। सिले हुए मेंढक को लिए हुए जुलूस बना कर तालाब की ओर चल पड़े। मेंढक को देखकर कौन बता सकता था कि उसके शरीर को चीरा गया है। वह पूर्ण रूप से स्वस्थ नज़र आ रहा था।

गोपिकुट्टन ने मेंढक को उतार कर तालाब के किनारे रखा ही था कि ऐसा प्रतीत हुआ, मेंढक ने मुड़कर सभी लड़कों को एक बार देखा। उसके शरीर में पल-पल बढ़ रहे स्पंदन ने सभी में जोश भर दिया। सभी लड़के एक साथ खुशी से चिल्लाने को थे कि मेंढक आगे को फुदका। किलकारियाँ भर कर उछल-कूद मचाते लड़कों की तरफ फिर एक बार दृष्टिपात करने के बाद मेंढक आगे उछला।

'थप्' की आवाज़ के साथ तालाब की गहराइयों में डुबकी लगाते हुए उतरते मेंढक को देख लड़कों ने हर्ष-ध्वनि की।

जीवनदान पाकर वह मेंढक तालाब की गहराइयों में आगे बढ़ा। उसकी यात्रा का पथ अंधकारपूर्ण और क्लेश से भरा था। आँखों के सामने अँधेरा-सा छाया था। पूरे बदन में असहनीय जलन। जैसे-तैसे ताकत बटोर कर मेंढक आगे बढ़ रहा था, फिर भी उसके मन में दुख या संताप नहीं था। धीरे-धीरे मेंढक तालाब के उस पार, घाट की सीढ़ियों तक तैरता हुआ पहुँचा। बगल की तरफ़ काई भरी सीढ़ियाँ जगह-जगह से तड़की हुई थीं। उनके नीचे पत्तों के झुरमुट में बने



अपने घर में घुस कर उसने लंबी साँस लीं।

कृष्ण पक्ष की रात थी। बाट जोहते-जोहते मेंढकी और उसके बच्चे थक गए थे। रो-रो कर आँखें बेहाल थीं। पति के दर्शन से पत्नी की और पिता को देखने से बच्चों की आँखें खुशी से चमक उठीं। बच्चे रोज़ की तरह पिता के शरीर पर चढ़ कर फुदकने लगे। मेंढक बेचारा दर्द से कराहने लगा। पत्नी और बच्चों की समझ में कुछ नहीं आया। परिवार के स्वामी के शरीर पर कोई भी फ़र्क नज़र नहीं आ रहा था। बदन पर लगे टाँकों पर अभी उनका ध्यान नहीं गया था।

"हम तो डर गए थे ....... कहाँ थे अब तक?"

पत्नी के चिंतापूर्ण सवाल का मेंढक से एकदम उत्तर देते न बना। वह लेट गया पूरी तरह से शरीर तान कर। फिर लंबी-लंबी साँसे ले हाँफ़ने लगा। तभी पत्नी और बच्चों को महसूस हुआ कि मेंढक को कुछ हो गया है। बच्चे रोने लगे। मेंढक ने उन्हें तसल्ली देते हुए पास बुलाया।

"बच्चो! ...... मेरे प्यारे बच्चो!"

दूसरी बार का संबोधन सुन बच्चों ने धीरे-से सिर उठाया। मेंढक बोलने लगा, "बच्चो! एक महान कार्य संपन्न करके तुम्हारा पिता आज घर लौटा है। ईश्वरीय संकल्प से प्रेरित कल्याण-कार्य में पूरी तरह से समर्पित हो गया है मेरा शरीर। इसके फलस्वरूप हमारे निरर्थक जातीय जीवन को एक दिव्य और शाश्वत प्रकाश मिला है। इस अनुपम प्रकाश को तुम्हें विरासत के रूप में देने के बाद अपने धन्य जीवन की स्मृतियाँ बटोरे तुम्हारा पिता विश्राम लेने का मन बना रहा है।"

मेंढक के बच्चे अपनी मासूमियत में टुकुर-टुकुर ताक रहे थे। उनकी समझ में कुछ न आया। मेंढकी को आशंका हुई कि पति पागल तो नहीं हो गया।

"तुम्हें क्या हो गया है?" पूछते हुए मेंढकी ने पति को पकड़ कर झकझोरा।

"उफ् ........ हाय!" दर्द से कराहते हुए मेंढक बुरी तरह तड़पने लगा। तभी मेंढकी की नज़र पति के शरीर पर लगे टाँकों पर पड़ी। आक्रोश में भर कर वह चिल्लाने को ही थी कि मेंढक ने उसे सहलाते-पुचकारते हुए अनुरोध किया, "रोना नहीं! मैं अभी जो कहने वाला हूँ, गौर से सुनो और उस पर शांति से विचार करो।"

उसके बाद मेंढकी और बच्चों ने वह दर्दनाक कहानी सुनी कि किस तरह मेंढक चालीस लड़कों वाली कक्षा में स्वयं पाठ्य-उपकरण के रूप में लेटा हुआ था और किस तरह उसका शरीर चीरा गया और सीला गया है। वह घटना सुनाते हुए मेंढक की आवाज़ में न किसी के प्रति शिकायत थी न आक्रोश। मेंढक को असल में गर्व का अनुभव हो रहा था, लग रहा था कि उसका जीवन सफल और सार्थक हो गया। ऐसे लड़कों के ज्ञान-लाभ के लिए घंटे भर अपना शरीर चिरवाने का सौभाग्य उसे मिला—ऐसे लड़कों के लिए, जो अपनी बुद्धि को ज्ञान से संपन्न करके, स्नेह और करुणा से जीवन में नया प्रकाश फैला कर, जीव मात्र के लिए सुनहरे भविष्य के निर्माण हेतु प्रयत्नशील हैं। मेंढक की बातों में कृतार्थता का यही भाव उभर रहा था। अपनी बातें समाप्त करते हुए मेंढक ने कहा कि मेरे शरीर के अंदर जो जीव-शक्ति शेष है, उसका एक-एक कण मैं जीव-जगत के कल्याण के लिए दान करना चाहता हूँ।

पिता की बातें सुनकर बच्चे सचमुच डर गए। मेंढकी के हृदय से जो चीत्कार निकली, उसकी गूँज तालाब में देर तक तरंगें उठाती रहीं।

"रोना नहीं ......." परिवार के स्वामी ने आज्ञा के स्वर में कहा।

मेंढकी और बच्चों ने तुरंत अपना रोना बंद कर दिया। "मैं जब आह्लाद में हूँ तब तुम लोगों का रोना कहाँ तक ठीक है?"

उसके घावों को देख कर मेंढकी अपने को सँभाल नहीं पाई। वह बेहोश होकर गिर पड़ी। उसके पति ने उसके बाद जो भी कहा, एक शब्द भी वह सुन नहीं पाई। बेसुध पड़ी माँ के समीप बैठे बच्चे पिता पर अपनी दृष्टि गाड़े चुपचाप सुनने लगे।

"प्यारे बच्चो! मेरा जीवन बेकार नहीं गया। मेरा जीवन एक महान यज्ञ में काम आया है, इसलिए सारपूर्ण बना है। मैं तो यह मानता हूँ, यह काम हम लोगों के लिए सौभाग्य की बात रही जो आज सुबह मैं उन मानव बालकों के हाथ में आया। इससे उन्हें मेरा आमाशय, पित्तवाहिनी, मलाशय आदि छूने और देखने का मौका मिला और मेंढक की शरीर-रचना का स्पष्ट चित्र उनके मस्तिष्क में अंकित हो सका।"

ज़रा-सा रुक कर मेंढक ने फिर कहा, "मेरे लिए अब जीवित रहना संभव नहीं है। बच्चो, अलविदा! जाने से पहले इतना कहना चाहूँगा कि तुम उन मानव बालकों पर कभी क्रोध न करना। हम किसी के भाग्य-विधाता नहीं हैं। यह भी हमारे हक में नहीं है कि किसी के कर्मों पर पाप की मुहर लगाएँ। पर इतना सच है कि हमारी टाँगें काट लेने वाले मेंढक-शिकारियों की तरह वे मानव बालक धूर्त और स्वार्थी नहीं हैं। उनकी दया और करुणा देखो, जो मरने से पहले आखिरी बार तुम लोगों को देखने और इतनी सारी बातें करने के लिए मुझे छोड़ दिया। उन निश्छल बालकों का सदा आभार मानना।"

इतना कह कर मेंढक ने बिना आँसू बहाए अपना दम तोड़ दिया।

मेंढकी तब भी बेसुध अवस्था में पड़ी थी। पिता की वाणी में निहित गहन और उदार भावों का स्मरण करते हुए बच्चे स्तब्ध और निश्चल बैठे रहे, उन्हें रोना तो आ रहा था, पर रो नहीं पा रहे थे। बेचारे बच्चे पिता के टाँकों को

उँगलियों से सहलाते हुए माँ के जागने की प्रतीक्षा में बैठे थे, पर मेंढकी कभी नहीं उठी।

आज भी मेंढक पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने पूर्वजों की परंपरा का निर्वाह कर रहा है।

—अनु. एच. बालसुब्रह्मण्यम

## प्रश्न

1. मास्टर नंबियार ने ज़िंदा मेंढक पकड़कर ले आने का निर्देश अपने विद्यार्थियों को क्यों दिया?
2. गोपिकुट्टन मोटे-तगड़े मेंढक को पकड़ने में किस प्रकार सफल हुआ?
3. चीरे गए मेंढक को देखकर कक्षा के बच्चों को कैसा लगा?
4. अपने अंत समय में मेंढक के आह्लाद का कारण क्या था?
5. भीतर से डरा हुआ होने पर भी मेंढक की नज़रों से सद्भाव और जागृति की झलक क्यों मिल रही थी?
6. ज्ञान-लाभ के नाम पर मेंढकों की चीर-फाड़ आपकी दृष्टि में कहाँ तक उचित है?



# 7. बंधन का पंछी

दिन चढ़ चुका था। लड़का जल्दी-जल्दी कदम बढ़ा रहा था। अब तक उसे बीड़ी-फ़ैक्टरी में पहुँच जाना था। लेकिन रास्ते में कुछ दोस्त गोली खेल रहे थे। उनमें वह भी शामिल हुआ। ...... ओह! कितना अच्छा था खेल! हर बार वही जीतता था। उस जीत ने खेल में चार चाँद लगा दिए थे ......।

इस तरह खेल का मज़ा लेते हुए वह जा रहा था। करीम को हँसी उमड़-सी पड़ी। सभी दोस्त "बोंड़ा, बोंड़ा" (पकौड़ा, पकौड़ा) कहकर नायडु को चिढ़ाते थे। वह अपनी मोटी देह को ढोकर, लँगड़ी-टाँग खेल में हारता...... हमेशा....।

हँसते-हँसते, सिर नीचा करके चलते जाने वाले करीम को मंडी बाज़ार में थोड़ी दूर जाने पर किसी ने पुकारा, "करीम ! करीम !" आवाज़ परिचित थी।

घूमकर देखा तो वही जनार्दन स्कूल जा रहा था।

करीम और जनार्दन में गहरी दोस्ती थी। दोनों एक ही दर्जे में पढ़ा करते थे।

"स्कूल जा रहे हो?" करीम ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ, रे!" जनार्दन ने कहा।

"इतनी जल्दी, तूफ़ान मेल की तरह निकले हो न?"

"हाँ. सामी के घर जाकर, वहाँ कुछ देर खेलकर, वहीं खाना खाकर, फिर

स्कूल जाता हूँ।"

"ओह .........।" कहकर चुप हुए करीम ने हृदय में एक अस्पष्ट वेदना-यातना अनुभव की। हाथ में किताबें लेकर जाने वाले जनार्दन को देखकर करीम को उससे जलन-सी हुई। जनार्दन को देखते-देखते, करीम को अपने स्कूल, वहाँ के दोस्त, वे खेल, एक-एक करके याद हो आए। करीम का एक-एक कदम मानो हाय ! हाय ! कहता रहा।

दोनों लड़के कुछ समय परस्पर बिना बोले चुपचाप चले। दोनों में करीम को ही बोलना पसंद नहीं आ रहा था।

जनार्दन ने ही मौन को पहले तोड़ा। "क्यों रे, करीम, स्कूल छोड़ दिया?" सहजता से जनार्दन ने पूछा।

प्रश्न ने करीम के दुख को बढ़ाया। उसने मुश्किल से कोशिश करके कहा, "बाप ने छुड़ा दिया।"

"क्यों?"

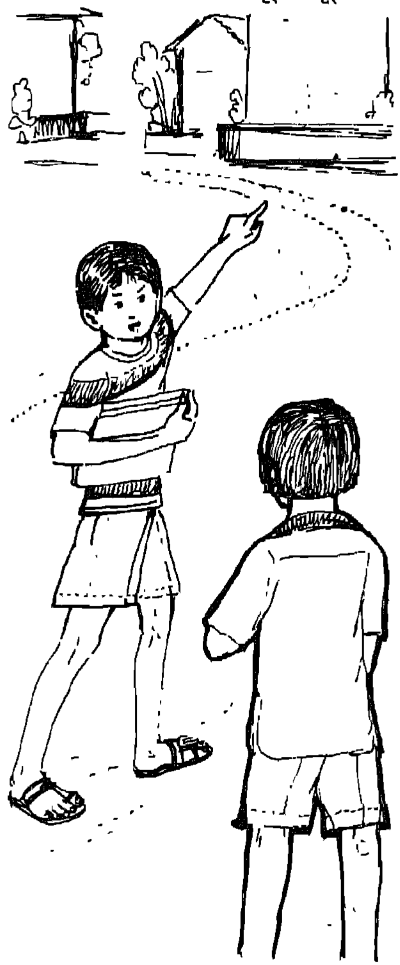
"क्यों? मुझे भी कुछ कमाना चाहिए, इसलिए स्कूल छोड़कर मुझे फ़ैक्टरी में दाखिल करा दिया।"

"छिः छिः, ऐसा नहीं करना चाहिए था तुम्हारे बाप को। देखो, मेरे पिताजी, मेरे छोटे चाचाजी सभी कहते हैं—लड़कों को इस उम्र में अच्छी तरह पढ़ना चाहिए। तुम्हारे बाप को तुम्हें बीड़ी-कारखाने में दाखिल कराना नहीं चाहिए था।" अमीरी में पले लड़के जनार्दन ने कहा।

दस वर्ष के लड़के करीम को समझ में न आने पर भी, उस समय जनार्दन की बात ही सही लगी।

दोनों लड़के तब तक चौराहे पर आ गए थे। एक रास्ता स्कूल को और दूसरा फैक्टरी को जाता था, बिछुड़ने वाले उन दो दोस्तों के प्रतीक की तरह।

"तो मैं जाता हूँ रे", कहकर जनार्दन ने स्कूल की तरफ़ हाथ फेरते हुए कहा, "वहाँ देखो करीम, स्कूल के पास दिखाई पड़ता है न घर, पीला घर, वहीं सामी का घर है। तुमने नहीं देखा है उसको, बड़ा अच्छा है। शाम को स्कूल छूटने के बाद हम सब मिलकर उसी के घर में खेलते हैं। चापु (एक प्रकार का खेल), खो-खो, लँगड़ी-टाँग, कबड्डी वगैरह। अगर तुम भी आओ, तो अच्छा लगेगा।"



"अच्छा।"

दोस्त के प्यार-भरे निमंत्रण पर करीम ने यंत्रवत् कह तो दिया 'अच्छा' परंतु दूसरे ही क्षण उसको कारखाने की याद आई। वह सोचने लगा—"कैसे हो सकता है?" उस कारखाने में शाम को भी काम लेते थे। कभी-कभी साढ़े सात, आठ बजे तक भी धुँधले प्रकाश के कमरे में बिठा देते थे। बीड़ी बाँधने के लिए। पत्ते कतरकर रखने का काम करीम का था। बीच में उस नरक से बाहर जाने के लिए वह कभी हिलता तो बाप की लाल आँखें उससे जैसे कहतीं—"चुपचाप बैठो।"

जनार्दन दूर-दूर होता जा रहा था। उस पार, दूर उसका स्कूल दीख रहा था। स्कूल को देखते-देखते करीम को लगा, जैसे

जीवन में उसने कुछ खो दिया है।

एक लंबी साँस छोड़कर वह अपने कारखाने की ओर चला। ऊपर-ऊपर चढ़ते सूरज को देखकर उसको डर लगने लगा। देर से जाने पर बाप से मार ज़रूर खानी पड़ेगी, इसलिए वह डरा। कमबख्त, गोली खेलने नहीं जाना चाहिए था, मन में सोचा। .......हूँ, हो जाने पर अब क्या करना? ........ करनी को भोगो.......! कहता हुआ ज़ोर से चलने लगा।

दस मिनट में वह फ़ैक्टरी के आगे पहुँच गया। लड़के गुल्ली-डंडा खेल रहे थे। करीम मुग्ध होकर देखता खड़ा रहा। 'गुल्ली' के लिए वह चाहे खाना भी छोड़ देता, इतना मन था उसका उस खेल में। एक घड़ी के पहले वह सोच रहा था कि बीड़ी की फ़ैक्टरी की सीढ़ियाँ चढ़कर जाना होगा। सो अब वह मानो भूल-सा गया था।

"तुचीप, तुदांड, तुबद्"(एक, दो, तीन) "रेडी" झुककर खड़ा, डंडा हाथ में लिए गुल्ली को ही देखता लड़का तिम्मा रेड्डी ज़ोर से बोला।

दूर पर गुल्ली को पकड़ने के लिए तैयार रहे विरोधी पक्ष के लड़के बोले, "रेडी"।

करीम का कुतूहल बढ़ा। तिम्मा कैसे मारता है, गुल्ली कितनी दूर जाती है, इसका अंदाज़ा करके वह गौर से देखता रहा।

तिम्मा रेड्डी ने डंडे से गुल्ली पर धीरे से चोट करके, ऊपर उछली गुल्ली पर फिर डंडा फिराया। लेकिन उस तरह फिराए डंडे से गुल्ली का मेल नहीं हुआ। वह केवल हवा में डंडा फिराकर खुद घूमकर खड़ा हो गया। ऊपर उछली गुल्ली फिर उसी जगह गिर पड़ी, जहाँ वह पहले थी।

तब खिलखिलाकर हँस पड़ा करीम।

हँसी हमेशा संक्रामक होती है। ........ और लड़के भी हँसे। तिम्मा रेड्डी

को अपमान-सा लगा और नाराज़ हुआ।

"यह आया बड़ा आदमी। हँस रहा है जैसे बड़ा खिलाड़ी है।" कहकर तिम्मा रेड्डी तमतमा उठा।

"मुझे एक बार खेलने दो तो दिखाऊँगा।" करीम ने दृढ़ निश्चय और अटल आत्म-विश्वास से कहा।

"आए बड़े खिलाड़ी, मैं जानता हूँ, चुप रह!"

"एक बार खेलने का मौका देकर देखना!"

"ओ हो, आओ, चाहो तो खेलो!"

चुनौती मिलते ही उसकी बाँहें फड़फड़ाने लगीं। दूसरा कोई कहे, "तुम यह काम नहीं कर सकते।" तो वह कहता, "ज़रूर कर सकता हूँ।" ऐसी दिलेरी थी उसकी, जो उसे आगे ढकेलती थी। वह जोश से आगे बढ़ कर आया। रेड्डी के हाथ से डंडा लेकर उसने गुल्ली को ठीक जगह रखकर डंडे को आराम से फिराते हुए हुंकारकर कहा, "रेडी।" दूर पर खड़े हुए लड़कों ने भी कहा, "रेडी।"



करीम ने डंडे से गुल्ली को उछालकर ऐसा मारा कि वह 'ठन' आवाज़ करके लड़कों के सिरों पर से उड़कर दूर रास्ते के नाले में गिरी।

लड़कों की टोली ने मुग्ध होकर 'शाबाश' कहा।

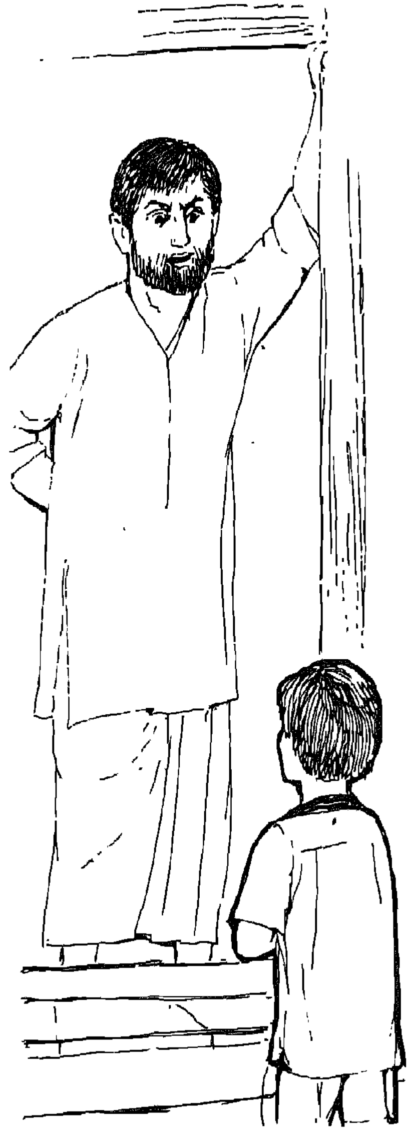
फक होकर खड़े तिम्मा रेड्डी के हाथ में डंडा देते समय करीम के चेहरे पर ऐसे

सेनापति का विजयोत्साह चमक रहा था जैसे हज़ार लड़ाइयाँ जीतकर आया हो।

इस प्रकार विजयी शेर की तरह करीम जब फूल रहा था तब उसके बाप ने फ़ैक्टरी के दरवाज़े पर खड़े होकर डाँटा, "बेवकूफ़, क्या कर रहा है वहाँ, फ़ैक्टरी आए बगैर?"

करीम की खुशी तभी गायब हुई। मीठा सपना देखते रहने वाला एक गरीब बेचारा सपने के टूटने पर जब जागता है तब उसको जीवन का विकराल स्वरूप दिखाई देता है। वही हालत करीम की भी थी। सुख से विहीन कारखाने के जीवन की याद करके वह डर से काँप उठा।

"अरे बेवकूफ़ यहाँ आ।" उसके बाप ने बुलाया। डरते-डरते करीम फ़ैक्टरी की सीढ़ियाँ चढ़कर दरवाज़े के पास गया। बाप गुस्से से जल रहा था। 'बेवकूफ़' कहकर उसने करीम के गाल पर ज़ोर से एक तमाचा मारा। करीम की आँखों से आँसू बह निकले। "लड़के के अविवेक के कारण उसके काम से परिवार को मिलने वाले कुछ पैसे न मिलें तो।" इस तरह की बात सोचने वाले पिता की दृष्टि पुत्र के आँसुओं की



ओर नहीं गई। उसने लड़के के आगे कुछ पत्ते और कैंची को फेंक दिया।

आँसू बहाते हुए करीम पत्ते कतरने लगा। बाहर खेलने वाले लड़कों की टोली से 'तुचीप, तुदांड तुंबद्–रेडी' की आवाज़ सुनाई देती थी।

यह आवाज़ सुनकर करीम का दिल बंधन में फँसे पंछी की तरह तड़पता रहा।

आँखों से आँसू लगातार बहते ही रहे। बाहर से लड़कों की आवाज़ बार-बार सुनाई पड़ती रही,

तुचीप, तुदांड, तुबद्–रेडी।

–अनु. गुरुनाथ जोशी

## प्रश्न

1. गोली के खेल में जीतकर फैक्टरी जाते हुए करीम के मुख पर अचानक हँसी क्यों उमड़ पड़ी?
2. अपने साथी जनार्दन को पढ़ने के लिए जाते देखकर करीम को जलन क्यों हुई?
3. करीम की पढ़ाई और खेल क्यों छूट गया था?
4. करीम के चेहरे पर कब हज़ार लड़ाइयाँ जीतकर आने वाले सेनापति का सा उत्साह दिखलाई पड़ा?
5. 'बंधन का पंछी' कहानी के शीर्षक की उपयुक्तता पर विचार व्यक्त कीजिए।

# 8. बुआ जी

बुआ जी के बिना मेरी दुनिया सूनी। मेरे बिना बुआ जी अंधी। बुआ जी और मैं—बस, यही हमारी दुनिया थी।

जब पहले पहल मैंने बुआ जी को देखा अर्थात जबसे मैंने होश सँभाला—तभी वह बूढ़ी थीं। हाथ खुरदरे, पाँव लंबे, गाल पिचके, दाँत मज़बूत, बाल भूरे, चेहरे पर ऐसा नूर कि हर बात में उस चेहरेवाली का फ़ैसला अंतिम। जो भी फ़ैसला होता उस पर अडिग, उस पर अमल करने में एकदम स्थिर।

घर में एक काली गाय थी। उसे मिलाकर हम तीन प्राणी थे। हम तीनों की सेविका थी माली। इन चार प्राणियों की गाड़ी बुआ जी अकेली हाँकती थीं। उनके हाथ मज़बूत, टाँगें उनसे भी मज़बूत और दिल सबसे बढ़कर मज़बूत था। इसी से लोग उनकी कद्र करते थे। गाँववालों की गमी-खुशी में बुआ जी के सिवाय और कौन उनका साथ दे? वह थीं गाँव की बुआ!

पड़ोस में जच्चा को बुआ जी से काम पड़ता। किसी घर में बच्चे का चूड़ाकर्म है—बस, बुआ जी को बुलावा आता, क्योंकि उनके हाथ पकवान बनाने में पक्के थे।

बुआ जी की बात रसीली थी, हर बात में शहद टपकता था। लेकिन जब

वे रूठ जातीं, तब वे 'मारम्मा' (बच्चों को चेचक आदि से बचानेवाली ग्रामदेवी) बन जातीं।

मैं रात को बुआ जी से चिपट कर सोता था। बुआ जी मुझसे कहे बिना कहीं भी चली जातीं, तो मैं सारा आसमान सिर पर उठा लेता और 'बुआ', 'बुआ' की रट लगाए रहता। मुझे दुनिया-भर के लोग चुप कराते तब भी मैं न चुप होता। मगर बुआ जी की शीतल दृष्टि पड़ते ही मेरी आँखें मोती बरसाना छोड़ कर फूल बरसाने लगतीं।



घर की काली गाय, एकदम सीधी और भोली थी। वह अपने आप कहीं मैदान में जाकर हरी घास चरती और साँझ पड़े घर आती। आज द्वादशी है—बुआ

जी की निर्जला एकादशी के बाद द्वादशी आई है। बुआ जी के लिए आज द्वादशी है, मेरे लिए रोज द्वादशी है। बुआ जी सवेरे ही नहातीं, गाय पूजतीं, गौ-ग्रास खिलातीं, बाद में मुझे खिलातीं और फिर आप खातीं। द्वादशी का खाना शानदार और बड़ा ही स्वादिष्ट होता था। उस दिन अगसी की एक भाजी तो ज़रूर बनती। कभी आँवले की चटनी, कभी अगसी-फूल की कढ़ी, तिस पर कभी खीर, कभी गुड़ान्न बनता। दो भाजियों के बिना पारण कैसा? बुआ जी की हर एकादशी निर्जला और हर द्वादशी के दिन त्योहार होता।

गौ माता हमारे घर की देवी थी। मैं कभी-कभी उसके थन से दूध चूस लेता, फिर भी वह चुप रहती। वह कभी मुझे सींग नहीं मारती, चाहे मैं उसके पाँव तले होऊँ, पीठ पीछे या मुँह के आगे। वह गाय मुझको पहचानती थी। वह बुआ जी की आवाज़ का उत्तर देती।

गाय बुआ ज़ी की हाँ में हाँ मिलाती। उसकी आँखों में लक्ष्मी बसती और थन में अमृत। उसका नाम था 'काली'। काली को पाकर घर समृद्ध हो गया था। वह घर की संपत्ति थी। वह बुआ जी का एकमात्र सहारा थी और थी दूध पिलानेवाली मेरी माँ।

घर की नौकरानी 'माली' गाय की पीठ सहलाती। उसे घास खिलाती। ज्वार के डंठलों को काट-काट कर उसकी नाँद में डालती। पड़ोस की छाछ, पिछवाड़े की फली और बरसात की दूब पाकर गाय अघा जाती। वह रात को गोठ में पड़ी जुगाली करती रहती। सुबह सबसे पहले काली उठती, अपने 'अँबे-अँबे' (बाँ-बाँ) से बुआ जी को जगाती। बुआ जी मुझे जगातीं। हम दोनों नदी पर नहाने जाते। नदी से आते ही गाय दुही जाती और ताज़ा दूध मुझे पीने को मिलता। उसके दूध का वह स्वाद निराला था। उसका सोंधापन ही कुछ न्यारा था। उसके बाद काली को खोलकर घास चरने के लिए बाहर भेज दिया जाता।

एक दिन काली सुबह की गई साँझ को देर तक नहीं आई। गुहार हुई, खूब खोज की गई, पर कहीं पता न चला।

काली के जाने के कुछ दिन बाद माली की बारी आई। घर सूना हो गया। अब गाँव में बेसहारा रहा नहीं जाता था। हम लोग एडतोरे से मैसूर चले आए। मैं एडतोरे से मैसूर तक रेलगाड़ी से आया। 'भक-भक', 'भक-भक' करती चलती रेलगाड़ी को मैंने पहली बार देखा और यह मेरी पहली यात्रा थी। यह यात्रा भुलाए नहीं भूलती। मैसूर मेरे लिए गाँव के मुकाबले में लंदन था। मैसूर जाते हुए बीच में लक्ष्मणतीर्थ नदी का पुल पड़ता है। पुल पर रेलगाड़ी के चलते ही अजीब-सी गुदगुदी का अनुभव होता था। ऊपर आसमान नीचे जल, बीच में मैं, मेरे साथ जाने कितने यात्री थे। सबको बड़ी शान से रेलगाड़ी ने नदी पार करा दिया। 'सागरकट्टे' स्टेशन पहुँचते ही हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहा, क्योंकि हम नदी पार कर आए थे। नदी का पाट बड़ा विशाल था, अब तो और भी विशाल हो गया है। उसका जल लाल है। बाढ़ के मौसम में नदी का पानी रेल की पटरी के पास तक पहुँच जाता है। उसकी लहरें रेल की लाइन के बाँध पर थप-थप मारती हैं। नदी में पानी इतना जमा होता है, जैसे कोई छोटा सागर हो। इन दिनों और भी अधिक पानी जमा है। कृष्णराज सागर (वृंदावन) का बाँध बनने के बाद लक्ष्मणतीर्थ पुल के पास नदी का जल पहले से दोगुना हो गया है।

मैसूर स्टेशन पर मैंने देखा कि रेल की कई लाइनें बिछी हुई हैं। गाँव में घर के पास एक ही लाइन थी। मैंने उसे बनते देखा था। उस लाइन पर जब पहले-पहल रेलगाड़ी चली थी तब गाँव भर के लोग उसे देखने के लिए जमा हो गए थे। मुझे याद है कि पहले दिन इंजन को भी एक देवता समझ कर गाँव वालों ने उस पर नारियल चढ़ाया और प्रसाद बाँटा था।

बुआ जी मैसूर में आकर अधिक क्रियाशील हो गईं थीं। एक रुपए मासिक किराए पर घर लिया गया। घर क्या—एक कमरा था। घर के बीच का हिस्सा दो-तीन परिवारों का ड्राइंग रूम था। उसमें तीन-तीन परिवारों के बच्चे सोते थे।

बुआ जी अब अपने कमरे में सोती थीं, जहाँ रसोई पकाई जाती थी। मैं बाहर सोता था। अब तो मैं बड़ा हो गया और स्कूल जानें लगा था।

लोअर सेकेंडरी वर्ग (इन दिनों की सातवीं कक्षा) तक पहुँचते-पहुँचते हमारा घर बदला। चामुंडीपुरम् में छोटा-सा घर बनवाकर हम रहने लगे। बुआ जी को यह घर बहुत प्रिय था। इस घर में उन्होंने जिस दिन सत्यनारायण की पूजा कराई थी उस दिन घर में बहुत लोग आए थे। दिन भर खूब चहल-पहल रही। बुआ जी गोया निहाल हो गईं। उन्हें मानों इस झोंपड़ी में एक बँगला मिल गया हो।

घर में बुआ जी का राज था। वे सामने वाले घर के कुएँ से पानी भर कर लाती थीं। कपड़े धोतीं, पौधे सींचतीं, सारा घर धोतीं, रसोई पकातीं, मुझे नहलातीं। हर हफ़्ते तेल से मालिश करके गरम पानी से मुझे नहलातीं और खुद ठंडे पानी से नहातीं। मुझे दही देतीं, आप छाछ से संतुष्ट हो जातीं। मुझे थाली में खिलाया जाता, आप पत्तल पर खाती थीं। रसोई-घर में एक छोटा-सा पत्थर जमीन पर गड़ा हुआ था, कभी-कभी मैंने बुआ जी को उस पत्थर पर खाते देखा था, पत्तल की किफ़ायत जो होती थी। बुआ जी की अक्ल इतनी तेज थी कि कलशी भर पानी लाकर आँगन में धर देतीं। सूरज की किरणें उस पर पड़तीं। ग्यारह-बारह बजे तक वह पानी बहुत गरम हो जाता और उससे मुझे नहलाया जाता। घर में एरंडी के पौधे लगा रखे थे। बुआ जी उनके बीज़ बटोर कर लातीं, उनका तेल निकालकर उससे मेरी मालिश करतीं, ऐसा शुद्ध तेल तो आज देखने को भी नहीं मिलता। घर का घी, घर का तेल, घर की रसोई—इससे बढ़ कर

आनंददायक चीज़ें क्या हो सकती थीं? उनकी उपलब्धि बुआ जी की कृपा से हो जाती थी, जो आज अलभ्य हैं।

मैं एस. एस. एल. सी. परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हो गया। राज्य भर में मेरा दूसरा स्थान था। बुआ जी को तो मानों जागीर मिल गई। वे इतनी प्रसन्न थीं कि घर-घर जाकर कहतीं कि मेरा बच्चा पूरे राज्य में प्रथम आया है। उन्हें देखते ही मेरा उत्साह बढ़ जाता था। घर में गरीबी का राज था, पर बुआ जी ने मुझे कभी इस बात का एहसास नहीं होने दिया कि हम लोग गरीब हैं। गरीबी बुआ जी के पल्ले, अमीरी मेरे भाग्य में। वे मानों मेरी भाग्य-विधाता थीं। वे घर में बराबर कहती रहती थीं, "यह गरीबी मेरे साथ जाती रहेगी, तुम राजा बनकर रहो। तुमको गरीबी क्यों सताए भला, मैं चली जाऊँगी। तुम मजे से रहो।" इस तरह बुआ जी मेरी ज़िंदगी में साया बन कर रहीं।

बुआ जी का आनंद उस समय चरम-सीमा पर पहुँच गया जब मेरा विवाह हुआ था। बहू को पाकर बुआ जी निहाल हो गईं। पत्नी के आने पर भी कई बरस तक बुआ जी ही रसोई का काम करती थीं। हाँ, पीछे चलकर एक जून पकाने का काम पत्नी के ज़िम्मे पड़ा।

घर में मेरी गैरहाज़िरी में अब तीन जने रहते थे—बुआ जी, मेरी पत्नी और एक कबरी बिल्ली। कबरी बिल्ली रोज़ खाने के बाद बुआ जी के सामने बैठ जाती। बुआ जी घंटों उससे बातें करती रहतीं। बुआ जी कभी गौरैया को चावल के दाने चुगातीं और कभी आराम से धूप सेंकती हुई बाहर बैठी रहतीं।

उन दिनों सवेरे-सवेरे सुनाई पड़ता था—"भज गोविंदौ, भज गोविंदौ, गोविंदौ भज मूढ़मते।"

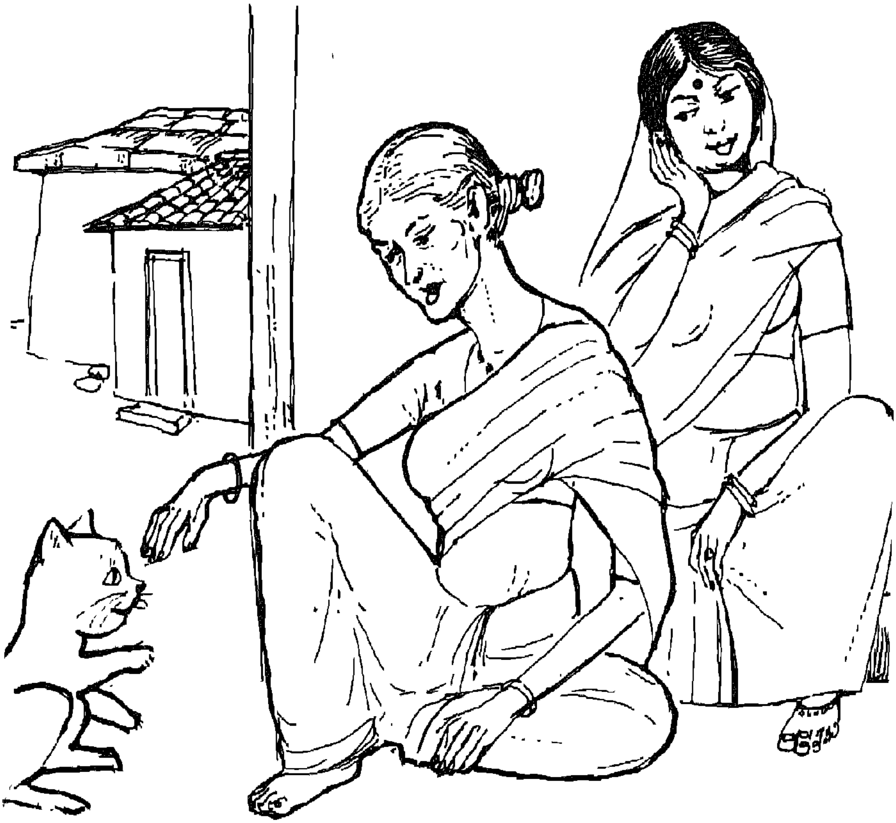
यह था बुआ जी का संस्कृत उच्चारण। वे रोज नियमित रूप से इसका पाठ करती थीं। वह कन्नड़ के न जाने कितने गीत गाती थीं। मेरा चौथा बच्चा उन्हें

इतना पसंद था कि उसका नाम उन्होंने 'सुंदर' रखा था। वह बच्चा हमेशा बुआ जी के सामने एक सूप में पड़ा रहता। उसकी चाँद-सी सूरत देखती-देखती न जाने बुआ जी कितने कन्नड़ गीत गातीं। काश वे गीत लिख लिए गए होते।

बुआ जी एक गीत बराबर गाया करती थीं :

"तारक्का बिंदिगे ना नीरिगे होगुवे तारे बिंदिगेया।"

(बहन, ला दे कलशी, मैं चली पानी भरने, ला री कलशी।)



यह कन्नड़ के प्रसिद्‌ध कृष्णभक्त कवि पुरंदरदास जी का गीत है। सारा गीत मेरे कानों में अभी भी गूँज रहा है।

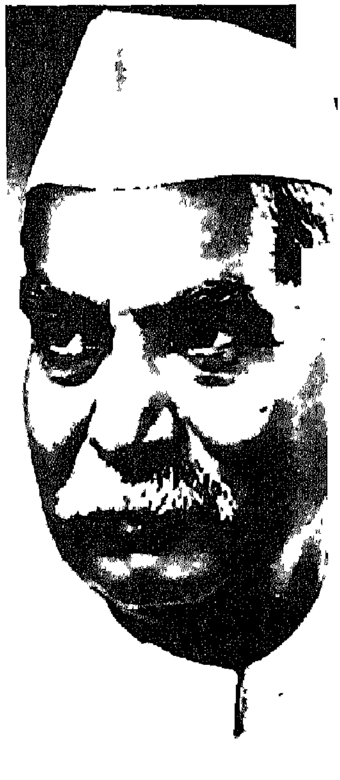
एकादशी के दिन शाम को बुआ जी की देह ठंडी पड़ गई। मुझे यकीन नहीं हुआ कि बुआ जी के प्राण चले जाएँगे। मैंने पड़ोस के दो-चार लोगों को बुला कर दिखाया। तब कहीं मैं मान सका कि सचमुच ही बुआ जी इस दुनिया में नहीं रहीं। मगर मेरे दिल में वे आज भी वैसी की वैसी बनी हुई हैं।

—ना. नागप्पा

## प्रश्न

1. बुआ जी सारे गाँव की बुआ क्यों कहलाती थीं?
2. 'बुआ जी के लिए आज द्‌वादशी है, मेरे लिए रोज द्‌वादशी है।' लेखक ने ऐसा क्यों कहा?
3. लेखक, बुआ जी और काली गाय के आपसी संबंधों पर प्रकाश डालिए।
4. 'काली की आँखों में लक्ष्मी बसती और थन में अमृत।' इस कथन का आशय समझाइए।
5. लेखक और बुआ जी को एडतोरे छोड़कर मैसूर क्यों आना पड़ा?
6. लेखक ने अपनी पहली रेल-यात्रा का जो वर्णन किया है, उसे अपने शब्दों में लिखिए।
7. 'गरीबी बुआ जी के पल्ले, अमीरी मेरे भाग्य में।' इस कथन से बुआ जी के स्वभाव की किस विशेषता का पता चलता है?

# 9. श्रीलंका की यात्रा



मेरे घर की स्त्रियों की इच्छा हुई कि मद्रास (चेन्नई) कांग्रेस के समय उधर से ही वे तीर्थाटन भी करती आएँ, क्योंकि रामेश्वरजी वहाँ से करीब हैं। मेरे साथ भाई साहब की धर्मपत्नी, मेरी स्त्री और कई अन्य मित्रों के घर की महिलाएँ मद्रास गईं। जाने के समय हम लोग गोदावरी-स्नान के लिए राजमहेंद्री में ठहर गए थे। कांग्रेस के अधिवेशन के बाद मदुरै, रामेश्वरम् आदि तीर्थों में और लोगो के साथ गए। रामेश्वरजी के दर्शन के बाद हम लोग लंका चले गए। घर के लोगों को वहीं छोड़ दिया। लंका जाने की सुविधा यह भी थी कि उन दिनों श्री रामोदारदास जी वहाँ लानिया के एक महाविद्यालय में बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन

कर रहे थे। उन्होंने कई बरसों तक छपरे में कांग्रेस का काम करके और कई बार जेल-यात्रा करने के बाद, बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन के लिए वहाँ जाने का निश्चय किया था। उनको वहाँ संस्कृत पढ़ाने तथा पाली में त्रिपिटकादि ग्रंथों के अध्ययन का सुअवसर मिला। कुछ दिनों बाद बौद्ध धर्म में दीक्षित होकर वह श्री राहुल सांकृत्यायन के नाम से मशहूर हुए और भिक्षु हो गए। उस समय वह केवल अध्ययन कर रहे थे, बाज़ाब्ता भिक्षु नहीं बने थे।

जब हम लोग वहाँ गए, उन्होंने लंका के मुख्य-मुख्य स्थानों में हमें ले जाने का प्रबंध किया। हमने भाड़े पर एक लारी ली और कई दिनों तक वहाँ घूमते-फिरते रहे। यह हम लोगों के लिए पहला ही अवसर था कि उस सुंदर टापू में हम भ्रमण कर रहे थे। टापू की खूबसूरती और हरियाली ने हम लोगों को मुग्ध कर दिया। कंडी के सुंदर मंदिर में जाकर हमने दर्शन किए। वहाँ से नूरएलिया के पहाड़ पर जाकर एक रात बिताई। वहाँ से सीताएलिया गए। कहा जाता है कि यहाँ पर रावण ने श्री जानकीजी को कैद करके अशोक वाटिका में रखा था। वहाँ जाते समय एक विचित्र चीज हम लोगों ने देखी। सीताएलिया नूरएलिया से कुछ दूर है। नूरएलिया पहाड़ की चोटी पर है और सीताएलिया पहाड़ के नीचे है। इसके चारों ओर पहाड़ हैं। ऐसा मालूम होता है कि प्रकृति ने मानो एक कटोरा बना दिया है, जिसकी दीवारें पहाड़ की हैं और जिसके पेंदे में एक छोटा-सा झरना है। वहीं एक छोटा मंदिर-सा है जहाँ श्री जानकीजी कैद की गई थीं। पहाड़ से उतरने में मोटर को कई बार चक्कर लगाना पड़ता है। उतरते समय हमने देखा कि कुछ दूर तक चारों तरफ़ फैला हुआ रक्तापोश का जंगल है। पहाड़ काटकर जो सड़क बनी थी उसकी बगल में दीवार की तरह पहाड़ खड़ा था। उस दीवार में कई तरह की मिट्टी या पत्थर देखने में आते

थे। उसमें एक तह, जो प्रायः दो-तीन फुट चौड़ी थी, ऐसी मिट्टी की थी जो बिलकुल राख जैसी थी। हमने इस मिट्टी को खोदकर देखा। ऐसा मालूम होता था कि जैसे ऊपर-नीचे पथरीली मिट्टी की तह है और बीच में एक तह राख की है। अशोक के पत्ते और राख हम अपने साथ भी लाए थे। इनको देखकर रामायण में वर्णित अशोक वाटिका और हनुमान जी द्वारा लंका के जलाए जाने की बात याद आ गई।

अनेक स्थानों को—जिनमें एक सुंदर गुफा थी जिसमें बहुत प्राचीन, पर सुंदर चित्र बने थे—देखते हुए हम लोग अनुराधपुर पहुँचे। यहाँ पर एक बहुत बड़ा स्तूप है। कहा जाता है कि अशोक के पुत्र महेंद्र ने, यहीं पर आकर, गया से लाई हुई महाबोधि वृक्ष की एक शाखा लगाई थी। हम लोग वहाँ रात में नौ बजे के करीब पहुँचे थे। पीपल के एक वृक्ष के पास बौद्धों की धार्मिक सभा हो रही थी। उसमें एक भिक्षु कुछ उपदेश कर रहे थे। दृश्य बहुत ही सुंदर था। हृदय पर उसका बहुत असर पड़ा। हम उपदेश को समझ तो न सके, पर वहाँ बैठी हुई श्रोतामंडली बीच-बीच में जो 'साधु ! साधु !' कह उठती थी उसे हम समझ सके। लोगों ने बताया कि पीपल का वह वृक्ष वही है, जिसे महेंद्र ने लाकर वहाँ लगाया था। यों तो बोधगया में भी जो महाबोधि वृक्ष है वह भी उस समय का नहीं है, पर उसी स्थान पर उसी वृक्ष का वंशज है। उसी तरह अनुराधपुर का महाबोधि वृक्ष भी महेंद्र का ही लगाया हुआ नहीं है, उसका वंशज है जो उसी स्थान पर आज तक किसी-न-किसी तरह से कायम है। पर इससे भी अधिक चमत्कार और आश्चर्य की बात हमको यह सुनाई गई कि वहाँ जो दीप जल रहा था वह भी महेंद्र का जलाया हुआ है। उस समय से आज तक वह दीप कभी बुझा नहीं है। बौद्धों ने उसे बाईस-तेईस सौ बरसों से बराबर जलाए रखा

है। यदि यह सच है तो शायद दुनिया में ऐसी कोई दूसरी अग्निशिखा न मिलेगी जो दो हज़ार बरसों से भी ज़्यादा समय से बराबर जलती आ रही हो।

सीलोन (श्रीलंका) की यात्रा समाप्त करके हम लोग रामेश्वरजी लौटे। वहाँ से परिवार के लोगों को लेकर, जिन तीर्थस्थानों में पहली बार न जा सके थे उनमें होते हुए छपरा वापस आए।

—राजेंद्र प्रसाद

## प्रश्न

1. श्री रामोदारदास जी किस प्रकार श्री राहुल सांकृत्यायन के नाम से विख्यात हुए?
2. सीताएलिया का क्या महत्त्व है?
3. सीताएलिया और नूरएलिया के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कीजिए।
4. रामायण में वर्णित अशोक वाटिका और हनुमान जी द्वारा लंका के जलाए जाने की पुष्टि किस बात से होती है?
5. श्रीलंका में अनुराधपुर की प्रसिद्धि का क्या कारण है?।



# 10. खिलाफ़त आंदोलन : कराची का ऐतिहासिक मुकदमा

प्रथम विश्वयुद्ध 1918 ई. में समाप्त हुआ। इस युद्ध में भारत ने अंग्रेज़ों का समर्थन किया था, पर यह माँग की थी कि युद्ध की समाप्ति पर ब्रिटिश सरकार उसे स्वशासन का अधिकार देगी। युद्ध में विजयी होने पर ब्रिटिश सरकार ने भारत की यह माँग स्वीकार नहीं की। वह और भी दमनात्मक कार्रवाई करने लगी। इस पर गांधी जी ने विदेशी सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन आरंभ कर दिया।

भारत की आज़ादी की लड़ाई में इस असहयोग आंदोलन का एक विशेष स्थान है। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत के राष्ट्रीय संघर्ष का यह पहला महान जन-आंदोलन था। इसमें लाखों की संख्या में आम जनता ने भाग लिया और विदेशी शासन को चुनौती दी। इस आंदोलन के नेता महात्मा गांधी थे। इसके दौरान भारतीयों ने विदेशी अदालतों, विद्यालयों इत्यादि का बहिष्कार किया और विदेशी शासन के विरोध में जेल जाना स्वीकार किया। इस आंदोलन की एक मुख्य विशेषता थी, हिंदू-मुस्लिम एकता।

तुर्की के सुल्तान को दुनिया के मुसलमानों का खलीफ़ा (धार्मिक मुखिया)

समझा जाता था। खिलाफ़त शब्द इसी से निकला है। प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान तुर्की ब्रिटेन के शत्रु देशों में से था। युद्ध के दिनों में ब्रिटिश सरकार ने तुर्की के खलीफ़ा का अधिकार बनाए रखने का आश्वासन दिया था परंतु जब युद्ध समाप्त हुआ तो तुर्की के अधीन क्षेत्रों को तो अलग कर ही दिया गया, स्वयं तुर्की के कई भागों पर विजयी देशों ने अपना अधिकार जमा लिया। तुर्की के प्रति इस अन्याय से भारत के मुसलमानों में बड़ी तीव्र प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अंग्रेज़ों का विरोध करने के लिए 'खिलाफ़त कमेटी' नाम की संस्था बना कर आंदोलन प्रारंभ कर दिया। इस आंदोलन के प्रमुख नेता अलीबंधु (मुहम्मद अली और शौकत अली) और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद थे। इस आंदोलन को गांधी जी का भी समर्थन प्राप्त था। इस प्रकार गांधी जी के द्वारा आरंभ किया गया असहयोग आंदोलन और खिलाफ़त आंदोलन दोनों परस्पर मिल गए। देश में राष्ट्रीय एकता का एक नया वातावरण बन गया। मुसलमानों ने स्वामी श्रद्धानंद को दिल्ली की जामामस्जिद में भाषण के लिए आमंत्रित किया। सिक्खों ने अमृतसर के स्वर्ण मंदिर की चाबी डॉ. सैफुद्दीन किचलू को सौंप दी।

असहयोग आंदोलन के दौरान अखिल भारतीय खिलाफ़त कमेटी का एक अधिवेशन 9 जुलाई, 1921 को कराची में हुआ। इस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया—"यह सम्मेलन घोषित करता है कि मुसलमान आज से अंग्रेज़ सरकार की फ़ौज में भर्ती नहीं होंगे। भर्ती में न तो किसी तरह की सहायता करेंगे और न मौन स्वीकृति ही देंगे। यदि अंग्रेज सरकार खुलकर या गुप्त रूप से तुर्की की खलीफ़ा सरकार के विरुद्ध युद्ध करती है तो भारत के मुसलमान उसके विरुद्ध सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू कर देंगे। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आगामी अहमदाबाद अधिवेशन में पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा कर देंगे और भारतीय गणतंत्र का झंडा फहरा देंगे।"

श्री आर वी थधानी की अनुमति से



श्री शकराचार्य

मौलाना शौकत अली डॉ किचलू मौलाना मोहम्मद अली

अंग्रेज़ सरकार ने कराची अधिवेशन के इस प्रस्ताव को राजद्रोह घोषित कर दिया। इसमें सम्मिलित शौकतअली, भारती कृष्णतीर्थ जी (शारदापीठ के

शंकराचार्य), मौलवी निसार अहमद, पीर गुलाम मुजादीद, मौलवी हुसैन अहमद, डॉ. सैफुद्दीन क़िचलू, मोहम्मद अली आदि को गिरफ़्तार कर लिया गया और कराची की अदालत में उन पर मुकदमा चलाया गया। इस मुकदमें के अवसर पर इन नेताओं ने कचहरी में मजिस्ट्रेट के प्रश्नों के जो उत्तर दिए वे उनकी देशभक्ति, स्वातंत्र्य प्रेम, निर्भीकता, आत्मसम्मान और अंग्रेज़ी सरकार की अवहेलना के द्योतक हैं।

अदालत में पूछे गए कुछ प्रश्न और नेताओं द्वारा दिए गए उनके उत्तर इस प्रकार हैं :

*शारदापीठ के शंकराचार्य श्री भारती कृष्णतीर्थ जी से पूछे गए प्रश्न और उनके उत्तर*

*मजिस्ट्रेट* : 9 जुलाई, 1921 को कराची में हुए अखिल भारतीय खिलाफ़त अधिवेशन में आप उपस्थित थे?

(शंकराचार्य जी ने खड़े होने और प्रश्नों का उत्तर देने से इनकार कर दिया)

*मजिस्ट्रेट* : कृपया खड़े हो जाइए और प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

*शंकराचार्य* : हमारे धर्मग्रंथों में संन्यास के नियमों के अनुसार अपने गुरु के अतिरिक्त और किसी मनुष्य के आगे हम खड़े नहीं हो सकते। मैं संन्यासी हूँ और हम संन्यासी चाहे हमें जेल में डाल दिए जाएँ, चाहे हमारा सिर काट लिया जाए, संन्यास के नियमों का उल्लंघन नहीं कर सकते। क्या कोई ऐसा नियम है जिसके अनुसार यदि मैं इस केस के बारे में कुछ कहना चाहूँ, तो मुझे खड़ा होना ही पड़ेगा?

*मजिस्ट्रेट* : यह मेरी आज्ञा है।

मोहम्मद अली बीच में बोले–"मिस्टर मजिस्ट्रेट! आप क्यों किसी संन्यासी को जानबूझ कर उसके धर्म के नियमों के विरुद्ध आचरण करने के लिए बाध्य कर रहे हैं? क्या यह आपको शोभा देगा? आपका भी अपना धर्म है जिसका आप सम्मान करते हैं।"

## *डॉ. सैफुद्दीन किचलू से पूछे गए प्रश्न और उनके उत्तर*

*मजिस्ट्रेट* : क्या आपको अपने विरोध में दी गई गवाही के बारे में कुछ कहना है?

(डॉ किचलू ने अंग्रेज़ी जानने के बावजूद उंर्दू के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में बयान देने से इनकार कर दिया।)

*मजिस्ट्रेट* : 9 जुलाई 1921 को कराची के खिलाफ़त कमेटी के अधिवेशन में आप उपस्थित थे?

*किचलू* : मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता।

*मजिस्ट्रेट* : क्या आप अधिवेशन के प्रस्ताव के समर्थन में बोले थे?

*किचलू* : मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता।

*मजिस्ट्रेट* : क्या उस अधिवेशन में सरकार के विरुद्ध कोई प्रस्ताव पारित किया गया था?

*किचलू* : मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता।

## *श्री शौकतअली से पूछे गए प्रश्न और उनके उत्तर*

*मजिस्ट्रेट* : क्या आप कराची के खिलाफ़त अधिवेशन में उपस्थित थे?

*शौकतअली* : अब तक कोई ऐसी आल इंडिया खिलाफ़त कांफ्रेंस नहीं हुई जिसमें मैं उपस्थित न रहा हूँ।

*मजिस्ट्रेट* : उस कांफ्रेंस में सरकार के विरुद्ध जो प्रस्ताव पारित किया गया था, क्या आपने उसका समर्थन किया?

*शौकतअली* : मैंने उसका समर्थन किया और मैं अब भी उसमें कही हुई सभी बातों को मानता हूँ। मुझे केवल इस बात का खेद है कि मैं कराची अधिवेशन में इस प्रस्ताव के पक्ष में कुछ भी नहीं बोला, हालाँकि मैंने खिलाफ़त के विषय में सैकड़ों भाषण भारत में सब जगह दिए हैं।

*मजिस्ट्रेट* : क्या आप और कुछ कहना चाहते हैं?

*शौकतअली* : हाँ, मैं बहुत कुछ कहे जा रहा हूँ, मगर आप सिर्फ़ वही बात लिख रहे हैं जिसे आप इस मुकदमें के लिए ज़रूरी समझते हैं। मैंने अंग्रेज़ी अदालतों पर कभी विश्वास नहीं किया। मुझे ऐसा लगता है कि रंगमंच के नाटक इन अदालतों से कहीं अधिक अच्छे होते हैं। हम सभी हिंदुओं, मुसलमानों, पारसियों और देश के अन्य सभी वर्गों का सचमुच दुर्भाग्य है कि हमारा संबंध इस सरकार से है।

*मजिस्ट्रेट* : मैं यहाँ आपका भाषण सुनने के लिए नहीं बैठा हूँ।

*शौकतअली* : तो आप मुझे फाँसी पर चढ़ा दीजिए। मैं सैकड़ों भाषण दे चुका हूँ। आपको भाषण देने की मुझे कोई ज़रूरत नहीं है।

*मजिस्ट्रेट* : आप सरकार को खुलेआम गालियाँ दे रहे हैं और केवल राजनीतिक बातें कर रहे हैं।

*शौकतअली* : इतने दिनों से आप हम सबको गालियाँ दे रहे हैं और यही आपका सरकारी वकील भी कर रहा है।

*मोहम्मद अली* : (बीच में बोलते हुए) मजिस्ट्रेट! क्या आपको ईश्वर में विश्वास नहीं है? क्या आप कानून में विश्वास नहीं करते? क्या आपका अपना कोई धर्म नहीं है? क्या आप हमें यह बताने देंगे कि इस्लाम के नियम क्या हैं?

*मजिस्ट्रेट* : आप बैठ जाइए।

*मोहम्मद अली* : मैं नहीं बैठ सकता।

*मजिस्ट्रेट* : मैं आपसे फिर कहता हूँ आप बैठ जाइए।

*मोहम्मद अली* : मैं नहीं बैठता। आप अपनी पुलिस या फ़ौज को मुझे बैठने के लिए बुलाइए। क्या ऐसा कोई नियम है जिसके अनुसार आप मुझे बैठने के लिए बाध्य कर सकते हैं?

(तभी पुलिस अधिकारी आया और उसने मोहम्मद अली से बैठने के लिए कहा, परंतु वे नहीं बैठे। लेकिन पुलिस अधिकारी के चले जाने के बाद वे स्वयं बैठ गए)

*मजिस्ट्रेट* : अगर आप इस तरह दबाव डालेंगे तो मैं आपको इसकी अनुमति नहीं दे सकता।

*शौकतअली* : यह क्या दबाव है? मुझे न बोलने देकर आप हमारे विश्वास का अपमान कर रहे हैं। मैं क्या कर सकता हूँ? आप यहाँ किस लिए हैं? आप सिर्फ ग्रामोफोन के रिकार्ड बने हुए हैं। मैं अपने मुकदमें के बारे में बोल रहा हूँ। अब मैं इस नतीजे

पर पहुँचा हूँ कि यह सरकार एक मज़ाक है। धिक्कार है इस अदालत को, धिक्कार है इस सरकार को, धिक्कार है इस पूरे दिखावे को, इस पूरी कार्रवाई को!

(मुकदमें के अंत में सभी नेताओं को राजद्रोह का अपराधी घोषित किया गया।)

—निरंजन कुमार सिंह

## प्रश्न

1. खिलाफ़त आंदोलन क्या था और वह गांधी जी के असहयोग आंदोलन से कैसे जुड़ गया?
2. कराची अधिवेशन में क्या प्रस्ताव पारित हुआ?
3. कराची प्रस्ताव का क्या परिणाम हुआ?
4. शंकराचार्य कृष्णतीर्थ जी ने क्या कहकर मजिस्ट्रेट की आज्ञा का उल्लंघन किया?
5. अदालत में दिए गए शौकतअली के बयान से उनके किन विचारों का पता चलता है?

# 11. अंधेर नगरी : चौपट राजा
# टके सेर भाजी टके सेर खाजा

(प्रस्तुत पाठ आधुनिक हिंदी गद्य के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र की लघु नाटिका 'अंधेर नगरी : चौपट राजा' का संक्षिप्त रूप है। इसमें लेखक ने तत्कालीन भारतीय राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था की उस विवेकहीनता को उजागर किया है, जिसके अंतर्गत अच्छे-बुरे, छोटे-बड़े, पापी-पुण्यात्मा, योग्य-अयोग्य आदि में कोई अंतर नहीं किया जाता। फलस्वरूप, समूची व्यवस्था विनाश को प्राप्त होती है। भाषा में बोलचाल के शब्दों का प्रयोग हुआ है और शैली बड़ी ही रोचक, हास्य एवं व्यंग्यपूर्ण है।)

## पहला अंक

स्थान—बाह्य प्रांत

(महंत जी दो चेलों के साथ गाते हुए आते हैं)

*सब* : राम भजो राम भजो राम भजो भाई।
राम के भजे से गनिका तर गई,
राम के भजे से गीध गति पाई।

राम के नाम से काम बनै सब,
राम के भजनु बिनु सबहि नसाई।
राम के नाम से दोनों नयन बिनु,
सूरदास भए कविकुलराई।।

*महंत* : बच्चा नारायणदास, यह नगर तो दूर से बड़ा सुंदर दिखलाई पड़ता है! देख, कुछ भिच्छा-उच्छा मिले तो ठाकुरजी को भोग लगे।

*नारायण* : गुरुजी महाराज, नगर तो नारायण के आसरे से बहुत ही सुंदर है पर भिक्षा सुंदर मिले तो बड़ा आनंद होय।

*महंत* : बच्चा गोबरधनदास, तू पच्छिम की ओर जा और नारायणदास पूरब की ओर जाएगा। देख, जो कुछ सीधा-सामग्री मिले तो श्री शालाग्रामजी का बालभोग सिद्ध हो।

*गोबरधन* : गुरुजी, मैं बहुत-सी भिच्छा लाता हूँ। यहाँ के लोग तो बड़े मालदार दिखलाई पड़ते हैं। आप कुछ चिंता मत कीजिए।

*महंत* : बच्चा, बहुत लोभ मत करना। देखना, हाँ :
लोभ पाप को मूल है, लोभ मिटावत मान।
लोभ कभी नहीं कीजिए, यामैं नरक निदान।

(गाते हुए सब जाते हैं)

## दूसरा अंक

स्थान—बाज़ार

*घासीराम* : चने जोर गरम—
चने बनावें घासीराम। जिनकी झोली में दुकान।।
चना चुरमुर चुरमुर बोले। बाबू खाने को मुँह खोले।।
चना खावे तोकी मैना। बोले अच्छा बना चबेना।।
चना खाए गफूरन मुन्ना। बोलें और नहीं कुछ सुन्ना।।
चने जोर गरम—टके सेर।

*नारंगीवाली* : नारंगी ले नारंगी—सिलहट की नारंगी, बुटवल की नारंगी। रामबाग की नारंगी, आनंदबाग की नारंगी। दोनों हाथों लो—नहीं पीछे हाथ ही मलते रहोगे। नारंगी ले नारंगी। टके सेर नारंगी।

*हलवाई* : जलेबियाँ गरमागरम। ले सेव, इमरती, लड्डू, गुलाबजामुन, खुरमा, बुँदिया, बरफ़ी, समोसा, पेड़ा, कचौड़ी, दालमोठ, पकौड़ी, घेवर, गुपचुप। हलुआ ले हलुआ मोहनभोग। जो खाय सो भी पछताय, जो न खाय सो भी पछताय। रेवड़ी कड़ाका। पापड़ पड़ाका। सब समान ताजा। खाजा ले खाजा। टके सेर खाजा।

*कुँजड़िन* : ले धनिया, मेथी, सोआ-पालक, चौराई-बथुआ, चना, सरसों का साग, ले बैंगन, लौकी, कोंहड़ा, आलू, अरुई, तरोई, मुरई। ले आदी, मिरचा, लहसुन, पियाज, टिकोरा। ले फालसा, खिरनी, आम, अमरूद, निंबुआ, मटर। जैसे काजी, वैसे पाजी। रैयत राजी, टके सेर भाजी।

*मेवावाला* : बादाम, पिस्ते, अखरोट, अनार, मुनक्का, किशमिश, अंजीर,

आलूबोखारा, चिलगोज़ा, सेब, नाशपाती, अंगूर का पिटारी। हमारा ऐसा मुल्क जिसमें अंग्रेज़ का भी दाँत खट्टा हो गया। ले सब मेवा टके सेर।

*पाचकवाला* : चूरन अमलबेध का भारी। जिसको खाते कृष्ण मुरारी।।
मेरा पाचक है पचलोना। जिसको खाता श्याम सलोना।।
चूरन बना मसालेदार। जिसमें खट्टे की बहार।।
मेरा चूरन जो कोई खाय। मुझको छोड़ कहीं नहिं जाय।।
चूरन खाते लाला लोग। जिनको अकिल अजीरन रोग।।
चूरन खावें एडिटर जात। जिनके पेट पचे नहिं बात।।
चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।।
चूरन पुलिस वाले खाते। सब कानून हजम कर जाते।।
ले चूरन का ढेर, बेचा टके सेर।

*जातवाला* : जात ले जात, टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनों बेचें, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानें, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावें। लुटाय दिया अनमोल माल, ले टके सेर।

*बनिया* : आटा, दाल, लकड़ी, नमक, घी, चीनी, मसाला, चावल, ले टके सेर।

(बाबाजी का चेला गोबरधनदास आता है और सब बेचनेवालों की आवाज सुन-सुनकर खाने के आनंद में बड़ा प्रसन्न होता है।)

*गोबरधन* : क्यों भाई बनिए, आटा कितने सेर?

*बनिया* : टके सेर।

*गोबरधन* : और चावल?

*बनिया* : टके सेर।

*गोबरधन* : और चीनी?

*बनिया* : टके सेर।

*गोबरधन* : और घी?

*बनिया* : टके सेर।

*गोबरधन* : सब टके सेर। सचमुच।

*बनिया* : हाँ महाराज, क्या झूठ बोलूँगा?

*गोबरधन* : (कुँजड़िन के पास जाकर) क्यों माई, भाजी क्या भाव?

*कुँजड़िन* : बाबाजी, टके सेर। लौकी, आलू, धनियाँ, मिरचा, साग सब टके सेर।

*गोबरधन* : सब भाजी टके सेर। वाह-वाह! बड़ा आनंद है। यहाँ सभी चीजें टके सेर। (हलवाई के पास जाकर) क्यों भाई हलवाई ? मिठाई टके सेर?

*हलवाई* : हाँ, बाबाजी, सचमुच सब टके सेर। इस नगरी की चाल ही यही है। यहाँ सब चीज टके सेर बिकती है।

*गोबरधन* : क्यों बच्चा! इस नगरी का नाम क्या है?

*हलवाई* : अंधेर नगरी।

*गोबरधन* : और राजा का क्या नाम है?

*हलवाई* : चौपट राजा।

*गोबरधन* : वाह! वाह! अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा। (यही गाता है और आनंद से बगल बजाता है)

*हलवाई* : तो बाबाजी, कुछ लेना-देना हो तो लो-दो।

*गोबरधन* : बच्चा, भिक्षा माँगकर सात पैसे लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई दे दे, गुरु-चेले सब आनंदपूर्वक इतने में छक जाएँगे।
(हलवाई मिठाई तोलता है—बाबाजी मिठाई लेकर खाते हुए और अंधेर नगरी ..., गाते हुए जाते हैं)

(यवनिका गिरती है)

## तीसरा अंक

स्थान—जंगल

(महंतजी और नारायणदास एक ओर से 'राम भजो'
और दूसरी ओर से गोबरधनदास 'अंधेर नगरी' गाते हुए आते हैं)

**महंत** : बच्चा गोबरधनदास! कह, क्या भिक्षा लाया? गठरी तो भारी मालूम पड़ती है।

*गोबरधन* : बाबाजी महाराज! बड़ा माल लाया हूँ, साढ़े तीन सेर मिठाई है।

*महंत* : देखूँ बच्चा! (मिठाई की झोली अपने सामने रखकर खोलकर देखता है) वाह! वाह! बच्चा इतनी मिठाई कहाँ से लाया? किस धर्मात्मा से भेंट हुई?



*गोबरधन* : गुरुजी महाराज! सात पैसे भीख में मिले थे, उसी से इतनी मिठाइ मोल ली है।

*महंत* : बच्चा! नारायणदास ने मुझसे कहा था कि यहाँ सब चीज टके सेर मिलती है, तो मैंने इसकी बात का विश्वास नहीं किया। बच्चा, यह कौन-सी नगरी है और इसका कौन-सा राजा है, जहाँ टके सेर भाजी और टके सेर खाजा है?

*गोबरधन* : अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा।

*महंत* : तो बच्चा! ऐसी नगरी में रहना उचित नहीं है, जहाँ टके सेर भाजी और टके ही सेर खाजा हो।

## दोहा

सेत सेत सब एक से, जहाँ कपूर कपास।
ऐसे देस कुदेस में, कबहुँ न कीजै बास।।

सो बच्चा चलो यहाँ से। ऐसी अंधेर नगरी में हज़ार मन मिठाई मुफ़्त की मिले तो किस काम की? यहाँ एक क्षण नहीं रहना।

*गोबरधन* : गुरुजी, ऐसा तो संसार भर में कोई देश ही नहीं है। दो पैसा पास रहने से ही मज़े में पेट भरता है। मैं तो इस नगर को छोड़कर नहीं जाऊँगा। और जगह दिन भर माँगो तो भी पेट नहीं भरता। बाजे-बाजे दिन तो उपवास ही करना पड़ता है। सो मैं तो यहीं रहूँगा।

*महंत* : देख बच्चा, पीछे पछताएगा।

*गोबरधन* : आपकी कृपा से कोई दुख न होगा, मैं तो यही कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए।

*महंत* : मैं तो इस नगर में एक क्षण भर नहीं रहूँगा। देख, मेरी बात

मान, नहीं पीछे पछताएगा। मैं तो जाता हूँ, पर इतना कहे जाता हूँ कि कभी संकट पड़े तो हमारा स्मरण करना।

*गोबरधन* : प्रणाम गुरुजी, मैं आपका नित्य ही स्मरण करूँगा। मैं तो फिर भी कहता हूँ कि आप भी यहीं रहिए।

(महंत जी नारायणदास के साथ जाते हैं, गोबरधनदास बैठकर मिठाई खाता है)

(यवनिका गिरती है)

## चौथा अंक

स्थान—राजसभा

(राजा, मंत्री, और नौकर लोग यथास्थान स्थित हैं)

(दो नौकर एक फ़रियादी को पकड़ लाते हैं)

*फ़रियादी* : दोहाई है महाराज, दोहाई है। हमारा न्याय होय।

*राजा* : चुप रहो। तुम्हारा न्याय यहाँ ऐसा होगा कि जैसा यम के यहाँ भी न होगा—बोलो क्या हुआ?

*फ़रियादी* : महाराज! कल्लू बनियाँ की दीवार गिर पड़ी सो मेरी बकरी उसके नीचे दब गई। दोहाई है महाराज, न्याय हो।

*राजा* : (नौकर से) कल्लू बनिए की दीवार को पकड़ लाओ।

*मंत्री* : महाराज, दीवार नहीं लाई जा सकती।

*राजा* : अच्छा, उसका भाई, लड़का, दोस्त जो हो उसको पकड़ लाओ।

*मंत्री* : महाराज। दीवार ईंट-चूने की होती है, उसका भाई-बेटा नहीं होता।

*राजा* : अच्छा, कल्लू बनिए को पकड़ लाओ। (नौकर लोग दौड़ कर बनिए को पकड़ लाते हैं) क्यों बे बनिए! बकरी क्यों दबकर मर गई?

*कल्लू* : महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं। कारीगर ने ऐसी दीवार बनाई कि गिर पड़ी।

*राजा* : अच्छा, इस कल्लू को छोड़ दो, कारीगर को पकड़ लाओ। (कल्लू जाता है, लोग कारीगर को पकड़कर लाते हैं) क्यों बे कारीगर! इसकी बकरी किस तरह मर गई?

*कारीगर* : महाराज, मेरा कुछ कसूर नहीं, चूनेवाले ने ऐसा चूना बनाया कि दीवार गिर पड़ी।

*राजा* : अच्छा, इस कारीगर को निकालो, उस चूनेवाले को बुलाओ। (कारीगर निकाला जाता है, चूनेवाला पकड़कर लाया जाता है) क्यों बे खैर-सुपारी चूनेवाले! इसकी बकरी कैसे मर गई?

*चूनेवाला* : महाराज! मेरा कुछ दोष नहीं, भिश्ती ने चूने में ढेर-सा पानी दे दिया, इसी से चूना कमज़ोर हो गया होगा।

*राजा* : अच्छा, चूनेवाले को निकालो, भिश्ती को पकड़ो। (चूनेवाला निकाला जाता है, भिश्ती लाया जाता है) क्यों बे भिश्ती! गंगा-जमुना की किश्ती! इतना पानी क्यों दिया कि इसकी बकरी गिर पड़ी और दीवार दब गई?

*भिश्ती* : महाराज! गुलाम का कोई कसूर नहीं, कसाई ने मसक इतनी बड़ी बना दी कि उसमें पानी ज़्यादा आ गया।



*राजा* : अच्छा, कसाई को लाओ, भिश्ती को निकालो (लोग भिश्ती को निकालते हैं, कसाई को लाते हैं) क्यों बे कसाई! मशक ऐसी क्यों बनाई कि दीवार लगाई बकरी दबाई?

*कसाई* : महाराज! गड़ेरिया ने टके पर ऐसी बड़ी भेड़ मेरे हाथ बेची कि उसकी मशक बड़ी बन गई।

*राजा* : अच्छा, कसाई को निकालो, गड़ेरिए को लाओ। (कसाई निकाला जाता है, गड़ेरिया आता है) क्यों बे गड़ेरिए, ऐसी बड़ी भेड़ क्यों बेची कि बकरी मर गई?

*गड़ेरिया* : महाराज! उधर से कोतवाल साहब की सवारी आई, सो उसके देखने में मैंने छोटी-बड़ी भेड़ का ख्याल नहीं किया, मेरा कुछ कसूर नहीं।

*राजा* : अच्छा, इसको निकालो, कोतवाल को अभी पकड़ लाओ। (गड़ेरिया निकाला जाता है, कोतवाल को पकड़कर लाते हैं) क्यों बे कोतवाल! तैने सवारी ऐसी धूम से क्यों निकाली कि गड़ेरिए

ने घबड़ाकर बड़ी भेड़ बेची, जिससे बकरी गिरकर कल्लू बनियाँ दब गया?

*कोतवाल* : महाराज, महाराज! मैंने तो कोई कसूर नहीं किया, मैं तो शहर के इंतजाम के वास्ते जाता था।

*मंत्री* : (आप ही आप) यह तो बड़ा गज़ब हुआ, ऐसा न हो कि यह बेवकूफ़ इस बात पर सारे नगर को फूँक दे या फाँसी दे। (कोतवाल से) यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली?

*राजा* : हाँ, हाँ, यह नहीं, तुमने ऐसे धूम से सवारी क्यों निकाली कि उसकी बकरी दबी?

*कोतवाल* : महाराज, महाराज—

*राजा* : कुछ नहीं, महाराज, महाराज ले जाओ, कोतवाल को अभी फाँसी दो। दरबार बरखास्त।

(लोग एक तरफ़ से कोतवाल को पकड़कर ले जाते हैं, दूसरी ओर से मंत्री के साथ राजा जाते हैं)

(यवनिका गिरती है)

## पाँचवाँ अंक

### स्थान—अरण्य

(गोबरधनदास गाते हुए आते हैं)

अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।
नीच, ऊँच सब एकहि ऐसे। जैसे भड़ुए पंडित तैसे।

कुल-मरजाद न मान बड़ाई। सबै एक से लोग-लुगाई।।
जात-पाँत पूछै नहिं कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।।
ऊँच-नीच सब एकहि सारा। मानहुँ ब्रह्मज्ञान बिस्तारा।।
अंधेर नगरी अनबूझ राजा। टका सेर भाजी टका सेर खाजा।।

(बैठकर मिठाई खाता है)

गुरुजी ने हमको नाहक यहाँ रहने को मना किया था। माना कि देस बहुत बुरा है, पर अपना क्या? अपने किसी राजकाम में थोड़े हैं कि कुछ डर है। मिठाई चबाना, मजे में आनंद से राम भजन करना।

(मिठाई खाता है, चार प्यादे चार ओर से आकर उसको पकड़ लेते हैं)

*पहला प्यादा* : चल बे चल, बहुत मिठाई खाकर मुटाया है। आज पूरी हो गई।

*दूसरा प्यादा* : बाबूजी चलिए, नमोनारायण कीजिए।

*गोबरधन* : (घबड़ाकर) हैं! यह आफ़त कहाँ से आई! अरे भाई, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

*पहला प्यादा* : बिगाड़ा है या बनाया है इससे क्या मतलब, अब चलिए फाँसी पर चढ़िए।

*गोबरधन* : फाँसी! अरे बाप रे बाप, फाँसी!! मैंने किसके प्राण लिए कि मुझको फाँसी!

*दूसरा प्यादा* : आप बड़े मोटे हैं, इस वास्ते फाँसी होती है।

*गोबरधन* : मोटे होने से फाँसी? यह कहाँ का न्याय है! अरे, हँसी फ़कीरों से नहीं करनी होती।

*पहला प्यादा* : जब सूली पर चढ़ लीजिएगा तब मालूम होगा कि हँसी है कि सच। सीधी राह से चलते हो कि घसीटकर ले चलें?

*गोबरधन* : अरे बाबा, क्यों बेकसूर के प्राण लेते हो? भगवान के यहाँ क्या

जवाब दोगे?

*पहला प्यादा* : भगवान को जवाब राजा देगा। हमको क्या मतलब! हम तो हुक्मी बंदे हैं।

*गोबरधन* : तब भी बाबा बात क्या है कि हम फ़कीर आदमी को नाहक फाँसी देते हो?

*पहला प्यादा* : बात यह है कि कल कोतवाल को फाँसी का हुकुम हुआ था। जब फाँसी देने को उसको ले गए तो फाँसी का फंदा बड़ा हुआ, क्योंकि कोतवाल साहब दुबले हैं। हम लोगों ने महाराज से अर्ज़ किया, इस पर हुक्म हुआ कि एक मोटा आदमी पकड़कर फाँसी दे दो, क्योंकि बकरी मारने के अपराध में किसी न किसी को सज़ा होनी ज़रूर है, नहीं तो न्याय न होगा। इसी वास्ते तुमको ले जाते हैं कि कोतवाल के बदले तुमको फाँसी दें।

*गोबरधन* : तो क्या कोई मोटा आदमी इस नगर भर में नहीं मिला जो मुझ अनाथ फकीर को फाँसी देते हैं?

*पहला प्यादा* : इसमें दो बात हैं—एक तो नगर भर में राजा के न्याय के डर से कोई मुटाता ही नहीं, दूसरे और किसी को पकड़ें तो वह न जानें क्या बात बनावे कि हमीं लोगों के सिर कहीं न आ पड़े और फिर इस राज में साधू महात्मा?...इन्हीं लोगों की तो दुर्दशा है, इसीसे तुम्हीं को फाँसी देंगे।

*गोबरधन* : दुहाई परमेश्वर की, अरे मैं नाहक मारा जाता हूँ ! अरे यहाँ बड़ा ही अंधेर है, अरे गुरु जी महाराज का कहा मैंने न माना, उसका फल मुझको भोगना पड़ा। गुरुजी कहाँ हो! आओ, मेरे

प्राण बचाओ, अरे मैं बेअपराध मारा जाता हूँ। गुरु जी, गुरु जी–

(गोबरधन चिल्लाता है, प्यादे उसको पकड़कर ले जाते हैं)

(यवनिका गिरती है)

## छठा अंक

### स्थान–फाँसीघर

(गोबरधनदास को पकड़े हुए चार सिपाहियों का प्रवेश)

*गोबरधन* : हाय बाप रे! मुझे बेकसूर ही फाँसी देते हैं। अरे भाइयो, कुछ तो धरम बिचारो! अरे मुझ गरीब को फाँसी देकर तुम लोगों को क्या लाभ होगा? अरे मुझे छोड़ दो। हाय! हाय! (रोता है और छुड़ाने का यत्न करता है)

*सिपाही* : अबे, चुप रह–राजा का हुकुम भला कहीं टल सकता है? यह तेरा आखिरी दम है, राम का नाम ले–क्यों शोर करता है, चुप रह।

*गोबरधन* : हाय! मैंने गुरुजी का कहना न माना, उसी का यह फल है। गुरुजी ने कहा था कि ऐसे नगर में न रहना चाहिए, यह मैंने न सुना! अरे! इस नगर का नाम ही अंधेर नगरी और राजा का नाम चौपट है, तब बचने की कौन आशा है। अरे! इस नगरी में ऐसा कोई धर्मात्मा नहीं है जो इस फ़कीर को बचावे। गुरुजी

कहाँ हो? बचाओ-बचाओ, गुरुजी-गुरुजी।

(रोता है, सिपाही लोग उसे घसीटते हुए ले चलते हैं। गुरुजी और नारायणदास आते हैं)

*गुरु* : अरे बच्चा गोबरधनदास! तेरी यह क्या दशा है?

*गोबरधन* : (गुरु को हाथ जोड़कर) गुरु जी! दीवार के नीचे बकरी दब गई, सो इसके लिए मुझे फाँसी देते हैं, गुरुजी बचाओ।

*गुरु* : अरे बच्चा! मैंने तो पहले ही कहा था कि ऐसे नगर में रहना ठीक नहीं, तूने मेरा कहना नहीं माना।

*गोबरधन* : मैंने आपका कहा नहीं माना, उसी का यह फल मिला। आपके सिवा अब ऐसा कोई नहीं है जो रक्षा करे। मैं आपका हूँ, आपके सिवा और कोई नहीं। (पैर पकड़कर रोता है)

*गुरु* : कोई चिंता नहीं, नारायण सब समर्थ हैं (भौं चढ़ाकर सिपाहियों से) सुनो, मुझको अपने शिष्य को अंतिम उपदेश देने दो, तुम लोग तनिक किनारे जाओ, देखो मेरा कहना न मानोगे तो तुम्हारा भला न होगा।

*सिपाही* : नहीं महाराज, हम लोग हट जाते हैं। आप बेशक उपेदश कीजिए। (सिपाही हट जाते हैं। गुरुजी चेले के कान में कुछ समझाते हैं)

*गोबरधन* : (प्रकट) तब तो गुरुजी हम अभी फाँसी चढ़ेंगे।

*गुरु* : नहीं बच्चा, मुझको चढ़ने दे।

*गोबरधन* : नहीं गुरुजी, हम फाँसी चढ़ेंगे।

*गुरु* : नहीं बच्चा हम। इतना समझाया नहीं मानता, हम बूढ़े हुए, हमको जाने दे।

*गोबरधन* : स्वर्ग जाने में बूढ़ा-जवान क्या? आप तो सिदध हो, आपको गति-अगति से क्या? मैं फाँसी चढ़ूँगा।

(इसी प्रकार दोनों हुज्जत करते हैं—सिपाही लोग परस्पर चकित होते हैं)

*पहला सिपाही* : भाई! यह क्या माजरा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।

*दूसरा सिपाही* : हम भी नहीं समझ सकते कि यह कैसा गड़बड़ है।

(राजा, मंत्री, कोतवाल आते हैं)

*राजा* : यह क्या गोलमाल है?

*पहला सिपाही* : महाराज! चेला कहता है मैं फाँसी चढ़ूँगा, गुरु कहता है मैं चढ़ूँगा कुछ मालूम नहीं पड़ता कि क्या बात है?



*राजा* : (गुरु से) बाबाजी! बोलो। काहे को आप फाँसी चढ़ते हैं?

*गुरु* : राजा। इस समय ऐसी साइत है कि जो मरेगा सीधा बैकुंठ जाएगा।

*मंत्री* : तब तो हम फाँसी चढ़ेंगे।

*गोबरधन* : हम, हम। हमको तो हुकुम है।

*कोतवाल* : हम लटकेंगे। हमारे सबब तो दीवार गिरी।

*राजा* : चुप रहो, सब लोग। राजा के आछत और कौन बैकुंठ जा सकता

है। हमको फाँसी चढ़ाओ, जल्दी, जल्दी।

*गुरु* : जहाँ न धर्म न बुद्धि नहिं, नीति न सुजन-समाज।
ते ऐसहि आपुहि नसैं, जैसे चौपट राज।।

(राजा को लोग टिकठी पर खड़ा करते हैं)

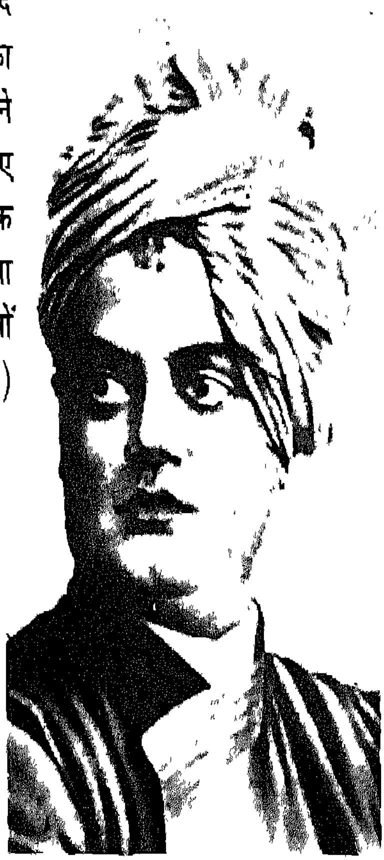
(पटाक्षेप)

—भारतेंदु हरिश्चंद्र

## प्रश्न

1. अंधेर नगरी की क्या विशेषता थी?
2. गुरु महंत ने अपने चेले गोबरधनदास को अंधेर नगरी छोड़ कर वापस चलने को क्यों कहा?
3. गोबरधनदास ने क्या तर्क देकर अंधेर नगरी छोड़ने से इनकार कर दिया?
4. गोबरधनदास फाँसी के तख्ते तक कैसे जा पहुँचा?
5. गुरु ने गोबरधनदास को फाँसी की सजा से कैसे मुक्त कराया?
6. 'अंधेर नगरी का राजा बुद्धिहीन और अहंकारी था।' नाटक से उदाहरण देकर इस कथन की पुष्टि कीजिए।

# 12. स्वामी विवेकानंद का एक पत्र



(यह पत्र स्वामी विवेकानंद ने स्वामी ब्रह्मानंद को लिखा था। इसमें धर्म के वास्तविक रुप का सार समझाया गया है। स्वामी विवेकानंद ने अकाल पीड़ित देशवासियों की सेवा के लिए अपने सन्यासी गुरु भाईयों से अपील की है कि आश्रम और पूजा पाठ पर जो धन खर्च किया जाता है, उसे कम करके बचे हुए पैसे को गरीबों की सेवा-सहायता में खर्च करना चाहिए।)

ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय

अल्मोड़ा,
9 जुलाई, 1897

अभिन्न हृदयेषु,

हमारी संस्था के उद्देश्य का पहला प्रूफ़ मैंने संशोधित करके आज तुम्हारे पास वापस भेजा है। उसके नियमवाले अंश (जो हमारी संस्था के सदस्यों ने पढ़े थे) अशुद्धियों से

भरे हैं। उसे सावधानी से ठीक करके छपवाना, नहीं तो लोग हँसेंगे।

...बहरमपुर में जैसा काम हो रहा है वह बहुत ही अच्छा है। इसी प्रकार के कामों की विजय होगी—क्या मात्र मतवाद और सिद्धांत हृदय को स्पर्श कर सकते हैं? कर्म, कर्म—आदर्श जीवन यापन करो—सिद्धांतों और मतों का क्या मूल्य? दर्शन, योग और तपस्या—पूजागृह—अक्षत चावल या शाक का भोग—यह सब व्यक्तिगत अथवा देशगत धर्म है। किंतु दूसरों की भलाई और सेवा करना एक महान् सार्वलौकिक धर्म है। आबालवृद्धवनिता, चांडाल—यहाँ तक कि पशु भी इस धर्म को ग्रहण कर सकते हैं? क्या मात्र किसी निषेधात्मक धर्म से काम चल सकता है? पत्थर कभी अनैतिक कर्म नहीं करता, गाय कभी झूठ नहीं बोलती, वृक्ष कभी चोरी या डकैती नहीं करते, परंतु इससे होता क्या है? माना कि तुम चोरी नहीं करते, न झूठ बोलते हो, न अनैतिक जीवन व्यतीत करते हो, बल्कि चार घंटे प्रतिदिन ध्यान करते हो और उसके दुगुने घंटे तक भक्तिपूर्वक घंटी बजाते हो, परंतु अंत में इसका उपयोग क्या है? वह कार्य यद्यपि थोड़ा ही है, परंतु सदा के लिए बहरमपुर तुम्हारे चरणों पर नत हो गया है—अब जैसा तुम चाहते हो वैसा ही लोग करेंगे। अब तुम्हें लोगों से यह तर्क नहीं करना पड़ेगा कि 'श्री रामकृष्ण भगवान हैं।' काम के बिना केवल व्याख्यान क्या कर सकता है! क्या मीठे शब्दों से रोटी चुपड़ी जा सकती है? यदि तुम दस ज़िलों में ऐसा कर सको तो वे दसों तुम्हारी मुट्ठी में आ जाएँगे। इसलिए समझदार लड़के की तरह इस समय अपने कर्मविभाग पर ही सबसे ज्यादा ज़ोर दो और उसकी उपयोगिता को बढ़ाने की प्राण-प्रण से चेष्टा करो। कुछ लड़कों को द्वार-द्वार जाने के लिए संगठित करो, और अलखिया साधुओं के समान उन्हें जो मिले वह लाने दो—धन, पुराने वस्त्र, चावल, खाद्य पदार्थ या और जो कुछ भी मिले। फिर उसे बाँट दो। वास्तव में यही सच्चा कार्य है। इसके बाद लोगों को श्रद्धा

होगी और फिर तुम जो कहोगे वे करेंगे।

कलकत्ते की बैठक में खर्च को पूरा करने के बाद जो बचे उसे दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायता के लिए भेज दो, या जो अगणित दरिद्र कलकत्ते की मैली-कुचैली गलियों में रहते हैं, उनकी सहायता में लगा दो—स्मारक भवन और इस प्रकार के कार्यों का विचार त्याग दो। प्रभु जो अच्छा समझेंगे वह करेंगे। इस समय मेरा स्वास्थ्य अति उत्तम है।

उपयोगी सामग्री तुम क्यों नहीं एकत्र कर रहे हो? मैं स्वयं वहाँ आकर पत्रिका आरंभ करूँगा। प्रेम और सहानुभूति से सारा संसार खरीदा जा सकता है। व्याख्यान, पुस्तकें और दर्शन का स्थान इनसे नीचा है।

कृपया शीश को लिखो कि गरीबों की सेवा के लिए इसी प्रकार का एक कर्म विभाग वह भी खोले।

...पूजा का खर्च घटाकर एक या दो रुपए महीने पर ले आओ। प्रभु की संतानें भूख से मर रही हैं......केवल जल और तुलसी-पत्र से पूजा करो और उसके भोग के निमित्त धन को उस जीवित प्रभु के भोजन में खर्च करो, जो दरिद्रों में वास करता है। तभी प्रभु की सब पर कृपा होगी। योगेन यहाँ अस्वस्थ रहा, इसलिए आज वह कलकत्ते के लिए रवाना हो गया है। मैं कल देवलधार फिर जाऊँगा। तुम सभी को मेरा प्यार।

सस्नेह,

विवेकानंद

## प्रश्न

1. सिद्धांत कथन और मतवाद से क्या आशय है?
2. देशगत और सार्वलौकिक धर्म में क्या अंतर है?
3. विवेकानंद ने बहरमपुर में अपनी संस्था द्वारा किए जा रहे किन-किन कामों की सराहना की है और किनको व्यर्थ बतलाया है?
4. झूठ न बोलना, चोरी न करना तथा अनैतिक कर्मों से बचना जैसे निषेधात्मक धर्म को विवेकानंद ने अनुपयोगी क्यों बतलाया है?
5. 'जीवित प्रभु' किसे कहा गया है और लेखक ने उसकी सेवा के लिए स्वामी ब्रह्मानंद को क्या सलाह दी है?

# 13. पाइक्राफ़्ट का मोटापा

बेहद मोटा, मांस का पहाड़ जैसा दिखने वाला पाइक्राफ़्ट मुझे पहली बार इसी क्लब में मिला था। उन दिनों मैं क्लब का नया-नया सदस्य बना था। परिचय के बाद पाइक्राफ़्ट मुझसे जल्दी ही घुलमिल गया। एक दिन वह अपने मोटापे की समस्या पर चर्चा करते हुए बोला, "मैं अपना वज़न कम करने के लिए कुछ भी कर सकता हूँ, कुछ भी दे सकता हूँ।"



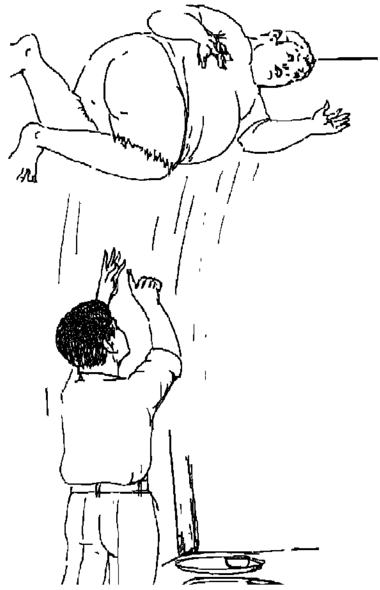
शायद उसे मेरी भारतीय मूल की परदादी के विषय में कहीं से पता चल गया था। हठ करने लगा कि वज़न घटाने के लिए उनका कोई अच्छा-सा भारतीय नुसखा मैं उसे दूँ। मैंने कई बहाने बनाए और यह भी कहा कि इसमें खतरा भी हो सकता है, किंतु पाइक्राफ़्ट के कान पर जूँ न रेंगी।

विवश होकर मैंने घर में पड़े हुए चंदन की लकड़ी के बने एक डिब्बे को खोजा, जिसमें मेरी परदादी के लिखे कई विचित्र-से नुसखे थे। वज़न घटाने के लिए भी एक था जिसमें अंडा, नाग का विष और न जाने क्या-क्या लिखा था। उसी को अंग्रेज़ी में लिख कर मैंने पाइक्राफ़्ट को दे दिया और उसे एक बार फिर सावधान किया कि यदि कोई गड़बड़ी होती है तो मुझे दोष न दें।

इसके बाद लगभग एक महीने तक पाइक्राफ़्ट में कोई परिवर्तन नहीं दिखा। वैसा ही मोटा किंतु थोड़ा अधिक चिंतित। फिर कई दिनों तक वह दिखा नहीं। मुझे अंदर ही अंदर प्रसन्नता हो रही थी और लग रहा था कि चलो आखिर उस मोटू से पीछा तो छूटा।

अचानक एक दिन पाइक्राफ़्ट का तार आया—"मिस्टर फॉमैलिन, भगवान के लिए तुरंत आ जाओ, पाइक्राफ़्ट।"

मैंने क्लब के नौकर से पाइक्राफ़्ट का पता लिया। ब्लुम्ज़बेरी में एक मकान के ऊपरी भाग में वह रह रहा था। मैं तुरंत वहाँ गया। "पाइक्राफ़्ट साहब भीतर हैं?" मैंने सामने के द्वार पर जाकर पूछा। वहाँ लोग समझ रहे थे कि पाइक्राफ़्ट अस्वस्थ है क्योंकि दो दिन से वह बाहर निकला ही नहीं था।



"वे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" यह कहने पर उन लोगों ने मुझे ऊपर जाने दिया। ऊपर के तल पर जाकर मैंने मुख्य द्वार की घंटी बजाई। मन-ही-मन मैं सोच रहा था कि उसे वह नुसखा आज़माना नहीं चाहिए था। खैर! एक भद्र महिला ने दरवाज़ा खोला और हिचकते हुए बोली, "आप?" मेरे नाम बताने पर उसने अंदर आने को कहा और फिर जैसे किसी रहस्य की ओर संकेत-सा करते हुए कहने लगी, "श्रीमान् जी, उन्होंने अपने आपको भीतर बंद कर रखा है।"

"बंद कर रखा है?" मुझे आश्चर्य हुआ।

"कल सवेरे अपने को बंद कर लिया और तब से किसी को अंदर नहीं जाने दिया है। बस, लगातार गालियाँ बके जा रहे हैं। हे भगवान!"

"इस कमरे में?"

"जी हाँ!" दुख के साथ उसने अपना सिर हिलाया। बस खाने के लिए मँगाते जा रहे हैं। मैं जो भी ला सकती हूँ, ला रही हूँ। खाने का सामान बाहर ही छोड़ देती हूँ और चली जाती हूँ। देखिए, शायद कुछ खा ही रहे हैं।

"फॉमैलिन; तुम?" अंदर से पतला-सा तीखा स्वर आया।

"अरे, पाइक्राफ़्ट, तुम?" मैं चिल्लाया और ज़ोर से दरवाज़ा खटखटाने लगा। "पहले उससे कह दो कि वह चली जाए।"

मैंने उस महिला को वहाँ से हटा दिया। अब मुझे दरवाज़े पर उँगलियों की अजीब-सी आवाज़ सुनाई दी, मानो कोई अँधेरे में दरवाज़े का हैंडिल टटोल रहा हो।

"वह तो गई।" मैंने ऊँचे स्वर में कहा। तब मैंने घूमने की आवाज़ सुनी। फिर पाइक्राफ़्ट की गुर्राहट सुनाई दी, "अंदर आ जाओ।"

मैंने हैंडिल घुमाकर दरवाज़ा खोला। अरे यह क्या? कमरे में कहीं वह दिखा ही नहीं। मुझे बड़ा धक्का लगा। उसका कमरा गंदा, अस्तव्यस्त, कुरसियाँ उलटी पड़ी हुईं। पुस्तकों के बीच में गंदी प्लेटें और थालियाँ। किंतु पाइक्राफ़्ट कहीं नहीं।

"दरवाज़ा बंद कर लो।" स्वर सुनाई दिया। अरे यह क्या? दरवाज़े के ऊपर, छत के कोने से लगा हुआ था पाइक्राफ़्ट, मानों किसी ने उसे वहाँ चिपका दिया हो। चेहरा परेशान और क्रोध से भरा हुआ। वह हाँफ़ रहा था।

मैंने दरवाज़ा बंद कर दिया और उसके नीचे से अलग हट कर उसकी ओर देखने लगा। फिर मैंने कहा, "अरे भले आदमी, क्या कर रहे हो तुम? इतनी आयु और भारी होते हुए तुम ऐसी बचकानी कलाबाज़ियों पर उतर आए। अगर कुछ टूट गया और तुम नीचे गिरे तो तुम्हारी गरदन नहीं टूट जाएगी?"

"काश कि मैं नीचे गिर सकता!" उसकी सीटी जैसी साँस सुनाई दी।

"तुम्हारी कमबख्त परदादी. . ."

"अबे चुप्प!" मैंने उसे डाँट दिया। फिर उससे पूछा, "लेकिन तुम वहाँ ऊपर छत से चिपके हुए रुके कैसे हो?"

फिर मैंने स्वयं ही अनुभव किया कि वह रुका हुआ तो था ही नहीं। वह तो वहाँ ऊपर गैस से भरे हुए किसी गुब्बारे की भाँति छत से लगा हुआ लुढ़क रहा था। अब उसने अपने को छत से दूर छिटककर अलग करने तथा दीवार के सहारे मेरे पास नीचे आने के लिए हाथ-पैर मारना प्रारंभ कर दिया।

"यह तुम्हारे उसी नुसखे का परिणाम है। तुम्हारी परदादी . . . ." बोलते-बोलते उसने दीवार पर टँगा हुआ एक फ्रेम वाला चित्र पकड़ने का प्रयत्न किया। वह चित्र टूट कर नीचे गिरा और चूर-चूर हो गया। पाइक्राफ़्ट फिर जाकर छत से टकराया। अब मैं समझा, यह सारा मामला क्या है?

वह फिर दीवार की पट्टी पकड़ कर अधिक सावधानी के साथ उलटा नीचे आने का प्रयत्न करने लगा।

वाह क्या दृश्य था! बड़ा-सा मोटा, लाल-लाल व्यक्ति, जगह-जगह से चूने के कारण सफ़ेद, उलटा तैरता हुआ छत से नीचे धरती पर आने का प्रयत्न कर रहा था। वाह!

"यह हुआ कैसे?"

"अरे, शरीर का भार पूरा का पूरा समाप्त हो गया।"

ओह, अब मैं पूरी बात ठीक से समझ गया था।

"ईश्वर की सौगंध, पाइक्राफ़्ट, घपला तुमने किया। तुम मोटापे का इलाज चाहते थे न! लेकिन तुमने बात तो सदैव अपने शरीर के वज़न की की थी।" वैसे मुझे अंदर ही अंदर बड़ा आनंद आ रहा था। "अच्छा लाओ, मैं तुम्हारी सहायता करता हूँ।" मैंने उसका हाथ पकड़ कर उसे नीचे खींचा। वह अपने पैर कहीं जमाने के लिए इधर-उधर फेंक रहा था, मैंने कमरे में रखी हुई भारी-सी मेज़ के नीचे उसे कर दिया जहाँ वह गुब्बारे की भाँति लुढ़कने लगा।

मैंने एक सिगार जलाया। पाइक्राफ़्ट बताने लगा कि क्या हुआ था।

"मैंने पहले उस नुसखे का एक छोटा-सा घूँट लिया। भयंकर कड़वा और बुरा स्वाद था उसका। पर मैंने पूरी की पूरी दवा पीने का निश्चय कर लिया था। बस नाक दबा ली और पूरी दवा पेट में उड़ेल ली। फिर तो मैं हलका .... और हलका होता चला गया और विवश भी।" अचानक वह बहुत भावुक हो उठा।

"अब मैं क्या करूँ? ..... इस दवा का प्रभाव धीरे-धीरे कम तो होगा न?"

"मुझे आशा नहीं है कि कम होगा। बहरहाल एक बात तो स्पष्ट है कि

अब तुम कमरे से बाहर कभी नहीं निकल सकते, अन्यथा ऊपर . . . . और ऊपर ही उठते चले जाओगे।'' मैंने ऊपर की ओर आकाश में हाथ हिलाए।

पाइक्राफ़्ट बहुत ही भावुक होकर फूट पड़ा तथा कुरसियों पर लात मारते हुए दरवाज़ा पीटने लगा। मैंने उसे समझाते हुए कहा :

''देखो, मैंने तुमसे कहा नहीं था कि तुम यह दवा मत लो। तुमने घुमा-फिरा कर बात की। मोटापा कहना भद्दा लगता था इसलिए तुमने वज़न की शिकायत की। तुमने.........''

''मैं सब समझ रहा हूँ। पर अब मैं क्या करूँ?'' उसके ऊपर सचमुच मुझे तरस आने लगा। मैंने उसे राय दी कि अब उसे नई परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालना चाहिए और हाथों की सहायता से छत से लग कर चलना-फिरना सीखना चाहिए जो कठिन नहीं है।

''पर मैं सो नहीं पा रहा हूँ। इसके लिए क्या करूँ?''

यह तो कोई विशेष समस्या नहीं थी। मैंने उसे समझाया कि स्प्रिंग वाले गद्दों को फ़ीतों की सहायता से छत पर उलटा जमा कर कंबल और चादर से उसे नीचे से ढँक कर और किनारों से सिलकर उलटा पलंग बना लिया जाए। पुस्तकालय की एक सीढ़ी कमरे में रख लें। भोजन अलमारी के ऊपर रख दिया जाएगा। फर्श पर नीचे आने की तरकीब भी समझ में आ गई। मोटी-मोटी कुछ पुस्तकें अलमारी के ऊपर रखी हों। जब भी पाइक्राफ़्ट को नीचे उतरना हो तो उन पुस्तकों को उठा ले। उनके बोझ से वह नीचे आ जाएगा। कमरे की दीवारों के चारों ओर लोहे के छल्ले ठोंक दिए जाएँ ताकि उन्हें पकड़ कर नीचे ही नीचे कमरे में वह घूम सके। हाँ, इसके लिए घर की सेविका को विश्वास में लाना होगा। पाइक्राफ़्ट तैयार हो गया। सेविका को बुलाकर पूरी बात समझाई। दो दिन वहीं रुककर मैंने सेविका की सहायता से सारी व्यवस्था की। बिजली

के तारों और स्विचों को उलटा लगाया ताकि पाइक्राफ़्ट उनका प्रयोग कर सके। अब मुझे बड़ा ही सुख मिल रहा था यह सोच कर कि अब यह मोटू कभी क्लब नहीं आ सकेगा।

एक दिन उसकी अँगीठी के पास बैठे-बैठे मुझे न जाने क्यों एक विचार आया और मैं पाइक्राफ़्ट से बोला,

''अरे पाइक्राफ़्ट, ईश्वर की सौगंध, इन सब की तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। बेकार में यह झंझट की।'' परिणाम की बात सोचे बिना मैं बोलता गया, ''सीसे की धातु की चद्दर लेकर उसके गोल-गोल टुकड़े कटवा लो। उन्हें अपने अंदर पहनने वाले कपड़ों के साथ सिलवा लो। सीसे के तल्ले वाले जूते पहनो और सीसे से भरा हुआ बैग हाथ में ले लो। बस, हो गया! इस तरह यहाँ कैद न रह कर तुम बाहर की खुली दुनिया में फिर जा सकोगे। घूम सकोगे।'' खुशी से पाइक्राफ़्ट के आँसू निकल पड़े। उत्तेजित होकर फूट पड़ा—''मैं फिर से सीधा खड़ा हो सकूँगा?''

मैंने अपनी बात पूरी की, ''अब तुम्हें समुद्री यात्रा में भी डरने की आवश्यकता नहीं। कभी तुम्हारा जहाज़ डूबने भी लगे तो अपने कपड़ों में से थोड़ा-सा य सारा सीसा निकाल दो। केवल आवश्यक सामान अपने हाथ में ले लो और हव में तैरते हुए समुद्र से बाहर।''

भावातिरेक में पाइक्राफ़्ट ने अपने हाथ का हथौड़ा गिरा दिया, जो मेरे सि को लगभग छूता हुआ नीचे गिरा।

"हे भगवान! मैं फिर से क्लब जा सकूँगा!"

"हे भगवान! यह मैंने क्या कह दिया!!'' मैं जैसे आसमान से ज़मीन प आ गिरा। डूबती हुई आवाज़ में मैंने कहा,

"हाँ. हाँ, क्यों नहीं? बिलकुल आ सकोगे।"

और पाइक्राफ़्ट सचमुच क्लब आने लगा है।

मेरे सामने बैठा तीसरी-बार मक्खन चुपड़ी रोटियाँ खा रहा है। यदि उसे पता चल जाए कि मैं क्या लिख रहा हूँ तो मेरी खैर नहीं। अभी फिर शायद आकर मुझे अपना रहस्य किसी को भी न बताने की बात करने लगेगा और अपने मोटापे का रोना रोने लगेगा।

—राजेंद्र दीक्षित

## प्रश्न

1. अपना वज़न घटाने का नुसखा पाने के लिए पाइक्राफ़्ट ने लेखक से हठ क्यों किया?
2. 'चलो आखिर उस मोटू से पीछा तो छूटा।' लेखक ने ऐसा क्यों सोचा?
3. पाइक्राफ़्ट द्वारा नुसखा आजमाए जाने का परिणाम क्या हुआ?
4. छत से लगकर उलटे तैरते हुए पाइक्राफ्ट को लेखक ने नीचे उतरने के लिए कौन-सी तरकीब सुझाई?
5. 'हे भगवान! मैं फिर से क्लब जा सकूँगा।' पाइक्राफ़्ट की यह बात सुन कर लेखक ने यह क्यों कहा, 'हे भगवान! यह मैंने क्या कह दिया?'

# परिशिष्ट

## लेखक परिचय

### रवींद्रनाथ ठाकुर

इनका जन्म बंगाल के समृद्ध परिवार में 6 मई, 1861 ई. को हुआ था। प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई। वकालत पढ़ने के लिए विदेश गए लेकिन बिना परीक्षा दिए वापस आ गए। स्वाध्याय से विविध साहित्यिक क्षेत्रों के मर्मज्ञ हुए। विदेश भ्रमण के साथ बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों का बहुत भ्रमण किया। उन्होंने लगभग एक हज़ार कविताएँ, दो हज़ार गीत, अनेक कहानियाँ, नाटक, उपन्यास, यात्रा-वृत्तांत, निबंध आदि की रचना की। इनको काव्य संग्रह 'गीतांजलि' पर सन् 1913 ई. में 'नोबल पुरस्कार' मिला। बँगला के साथ-साथ अंग्रेज़ी में भी बहुत साहित्य लिखा। उनकी रचनाओं का भारत एवं विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। साहित्य के साथ-साथ संगीत, चित्रकला आदि में भी इनकी गहन रुचि थी। इन्होंने प्राचीन भारतीय शिक्षा, संस्कृति एवं कला को पुनर्जीवित करने के लिए 'शांतिनिकेतन' की स्थापना की, जो आज विश्वविद्यालय है। 7 अगस्त, सन् 1941 को इनका स्वर्गवास हो गया।

### शकुंतला भारती

शकुंतला भारती तमिल के महाकवि श्री सुब्रह्मण्य भारती की कनिष्ठ पुत्री हैं। भारती

जी ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय भाग लिया था और अपनी रचनाओं के द्वारा भारतीय जनता में देश-भक्ति और बलिदान की अभूतपूर्व भावना जागृत की थी। पिता का संस्कार पुत्री पर भी पड़ा। शकुंतला भारती भी तमिल की प्रसिद्ध लेखिका हैं। रेखाचित्र और संस्मरण विधा लिखने में सिद्धहस्त हैं। भारती जी के निधन के पश्चात उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को प्रकाश में लाने में भारती के भाई श्री सी. विश्वनाथन और शकुंतला भारती जी का विशेष योगदान है।

## इंदिरा वासवानी

इनका जन्म 1936 ई. में हुआ। इंदिरा जी सिंधी की विख्यात कहानीकार हैं। इनकी कहानियों में जीवन के यथार्थ का मार्मिक चित्रण मिलता है। कहानी के अतिरिक्त इनकी कविताएँ भी बड़ी मर्मस्पर्शी हैं। व्यवसाय से अध्यापन का कार्य करने वाली इंदिरा वासवानी की इतिहास में भी विशेष रुचि है। कच्छ (गुजरात) के आदीपुर में विद्यालय की प्रधानाध्यापिका रही हैं।

इनकी रचनाओं में 'नालो' और 'मंजरी' कहानी-संग्रह विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं।

## सोमनाथ साधू

इनका जन्म 25 अगस्त, 1935 ई. को श्रीनगर (कश्मीर) में हुआ। साधू जी बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति हैं। इनके रेडियो रूपक और हास्य-व्यंग्यात्मक निबंध बहुत ही लोकप्रिय हैं। 'ग्रैंड रिहर्सल' नाटक पर इन्हें जम्मू कश्मीर राज्य की कल्चरल अकादमी ने पुरस्कृत किया। अभिनय के क्षेत्र में भी इनको विशेष सफलता मिली है। इन्होंने 'मआंज्यरात' और 'महजूर' नामक कश्मीरी चलचित्रों में सफल अभिनय भी किया है।

बहुत समय तक साधू जी रेडियो कश्मीर, श्रीनगर में एक्सटेंशन अफ़सर के पद पर कार्य किया है। जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों को अत्यंत सरल एवं हास्यपूर्ण शैली में लिखना इनकी विशेषता है। प्रस्तुत पुस्तक में संगृहीत 'जब मैंने नेकटाई बाँधी' रचना इसका ज्वलंत उदाहरण है।

## वी. आर. सुधीश

इनका जन्म 1961 ई. में हुआ। सुधीश मलयालम के लोकप्रिय कहानीकार हैं। अब तक इनके पाँच कहानी-संग्रह और एक उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। साहित्यकार के साथ-साथ वे सफल संपादक भी हैं। अनेक काव्य-संग्रहों और कहानी-संग्रहों का सफल संपादन भी किया है। इनकी कहानियों में मानवीय संवेदनाओं का कुशल चित्रण देखने को मिलता है। संकलित कहानी 'पीढ़ी-दर-पीढ़ी' में मानव जगत के व्यापक हित में अपना जीवन उत्सर्ग करने वाले एक मेंढक के उदात्त विचारों का विशद एवं मर्मस्पर्शी वर्णन है।

## मुद्दराज अर्स सुब्रह्मण्य अरस चदुरंग

इनका जन्म मैसूर जिले (कर्नाटक) के कल्लहल्ली में 1 जनवरी, 1916 ई. को हुआ। इन्होंने मैसूर विश्वविद्यालय से बी. ए. की उपाधि प्राप्त की। इनकी साहित्यिक उपलब्धियों पर मैसूर विश्वविद्यालय ने डी.लिट. की मानद उपाधि प्रदान की।

चदुरंग कन्नड़ के लोकप्रिय कहानीकार, नाटककार और उपन्यासकार हैं। इनको कर्नाटक राज्योत्सव पुरस्कार के अतिरिक्त कर्नाटक साहित्य अकादमी और केन्द्रीय साहित्य अकादमी ने भी पुरस्कृत किया है। चदुरंग की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'स्वप्न सुंदरी', 'इणु कुनोट', 'शब्द मने', 'वैशाख (कहानी संग्रह), 'सर्वमंगल', 'मृगया' (उपन्यास), 'कुमार राम', 'बिंब' (नाटक)।

सर्वमंगल पर आधारित फिल्म का इन्होंने सफल निर्देशन भी किया है। इस फिल्म की पट-कथा संवाद तथा निर्देशन पर पुरस्कार भी मिला।

## ना. नागप्पा

इनका जन्म 1911 ई. में कर्नाटक राज्य के एडतोरे ग्राम में हुआ। हिंदी में एम.ए. की योग्यता प्राप्त की। अनेक वर्षों तक स्नातकोत्तर हिंदी अध्ययन तथा अनुसंधान विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर में अध्यक्ष पद पर कार्य करने के बाद अवकाश ग्रहण किया।

दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार-प्रसार में नागप्पा जी का विशेष योगदान है। इन्हें हिंदी का 'भीष्म पितामह' कहा जाता है। पिछले छह से अधिक दशकों से हिंदी विभागों की स्थापना, पाठ्य-सामग्री-निर्माण, अनुसंधान, अनुवाद आदि क्षेत्रों में इनका योगदान उल्लेखनीय है। 'बुआ जी', 'सैद्धांतिक व्याकरण', 'व्यावहारिक हिंदी', 'दक्षिण में हिंदी प्रचार का इतिहास' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। वे कर्नाटक से प्रकाशित हिंदी की त्रैमासिक पत्रिका 'भाषा पीयूष' के प्रधान संपादक हैं।

हिंदी सेवा के लिए नागप्पा जी को राज्य एवं केंद्र स्तर पर अनेक संस्थाओं ने सम्मानित किया है। कुछ समय पहले बिहार सरकार के राज-भाषा विभाग ने उन्हें 'बाबू राजेंद्र प्रसाद हिंदी प्रचार शिखर' सम्मान से भी विभूषित किया है।

## राजेंद्र प्रसाद

डॉ. राजेंद्र प्रसाद का जन्म छपरा (बिहार) के जीरादेई ग्राम में 1884 ई. में हुआ था। कलकत्ता के प्रेसिडेंसी कॉलेज से एम.ए. और एल.एल.बी. की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कीं। ये बड़े कुशाग्रबुद्धि के छात्र थे। सभी परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

कुछ समय अध्यापन-कार्य के बाद 1911 ई. से कलकत्ता हाईकोर्ट और 1916 ई. से पटना हाईकोर्ट में वकालत कार्य किया। चंपारन जिला (बिहार) के नील सत्याग्रह में सक्रिय भाग लिया और महात्मा गांधी जी के संपर्क में आए। 1920 ई. में वकालत छोड़कर सक्रिय राजनीति में भाग लेना शुरू कर दिया। ये भारतीय कांग्रेस के प्रमुख नेता थे। भारतीय कांग्रेस के तीन बार सभापति चुने गए। 1950 ई. में भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने और 1962 ई. तक उसी पद पर रहे। 1963 ई. में पटना में इनकी मृत्यु हुई।

राजनीति में व्यस्त जीवन में रहकर भी उन्होंने सृजन कार्य किया है। 'भारतीय शिक्षा', 'गांधी जी की देन', 'साहित्य शिक्षा और संस्कृति', 'आत्मकथा' आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। राजनीति में रहकर भी इनका संपूर्ण जीवन भारतीय जीवन-मूल्यों एवं आदर्शों का प्रतिरूप था।

## निरंजन कुमार सिंह

सिंह साहब का जन्म 1921 ई. में ग्राम फेसुड़ा, जिला वाराणसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ। काशी विद्यापीठ से विशारद और शास्त्री, आगरा विश्वविद्यालय से एम.ए. तथा इलाहाबाद से एल.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। राजकीय महाविद्यालय, ज्ञानपुर, वाराणसी, राजकीय सेंट्रल पेडागाजिकल इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर और भुवनेश्वर में शिक्षण कार्य किया। 1974 ई. से 1981 ई. तक एन.सी.ई.आर.टी. के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग में रीडर के पद पर रहकर शिक्षण सामग्री निर्माण में नई दिशा प्रदान की।

शिक्षा एवं शिक्षण विषयक लेखों के अतिरिक्त 'शिक्षा के सिद्धांत और प्रयोग', 'शिक्षा मनोविज्ञान', 'सामान्य शिक्षण सिद्धांत तथा विधियाँ', 'शिक्षालय संगठन', 'हिंदी भाषा शिक्षण', 'माध्यमिक विद्यालयों में हिंदी शिक्षण' आदि पुस्तकों की रचना की।

फरवरी 1981 में अवकाश ग्रहण करने के पश्चात् शैक्षिक कार्यों एवं शिक्षा विषयक ग्रंथों के निर्माण में संलग्न हैं। एन.सी.ई.आर.टी. की शैक्षिक सामग्री-निर्माण में भी इनका सक्रिय योगदान है।

## भारतेंदु हरिश्चंद्र

वाराणसी (उत्तर प्रदेश) के एक संपन्न परिवार में 1850 ई. में भारतेंदु जी का जन्म हुआ था। ये बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। अपने अल्पकालीन जीवन में इन्होंने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को समृद्ध किया। वे समकालीन साहित्यकारों के प्रेरणास्रोत थे। नाटक, कविता, कथा साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं के क्षेत्र में युग प्रवर्तक का कार्य किया। साहित्य सेवा के कारण इनको 'भारतेंदु' की उपाधि मिली और इनके काल को 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना जाता है।

इनकी रचनाओं में देश-प्रेम, स्वभाषा-प्रेम तथा समाज सुधार का स्वर प्रमुख है। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं 'प्रेम माधुरी', 'प्रेम फुलवारी', 'प्रबोधिनी', 'प्रेम सरोवर', 'भक्तमाल', 'सतसई शृंगार' (कविता), 'सत्य हरीश्चंद', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'श्री चंद्रावली

(नाटक), 'पूर्ण प्रकाश', 'चंद्रप्रभा' (उपन्यास), अनेक लेख एवं निबंध। इनकी सभी रचनाएँ भारतेंदु ग्रंथावली के तीन भागों में संकलित हैं। इनका निधन 1885 ई. में हुआ।

## स्वामी विवेकानंद

इनका जन्म 12 जनवरी, 1863 ई. को कलकत्ता में हुआ था। बचपन का नाम नरेंद्र नाथ था। ये बड़े कुशाग्रबुद्धि के छात्र थे। इनकी रुचि आध्यात्मवाद की ओर झुकी और स्वामी श्री रामकृष्ण जी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उनके शिष्य बन गए। छह वर्ष तक उनसे अध्यात्म विद्या ग्रहण की और 25 वर्ष की आयु में संन्यासी हो गए।

स्वामी जी के जीवन की एक महत्त्वपूर्ण घटना है अमरीका में आयोजित विश्व धर्म-सम्मेलन में भाग लेना। 1893 ई. में शिकागो शहर में आयोजित विश्व धर्म-सम्मेलन में उनके 'धर्म समन्वय' का विचार सुनकर विश्वभर से आए श्रोतागण की आँखें खुली की खुली रह गईं। इसके बाद स्वामी जी के प्रवचन सुनने के लिए अपार जनसमूह उमड़ने लगा। ढाई वर्ष तक यूरोप के विभिन्न देशों में भारतीय दर्शन का प्रचार करने के बाद 1896 ई. में वे भारत लौटे।

इन्होंने भारत में एक नई चेतना जागृत की और भारतवासियों को आत्मसम्मान के साथ जीना सिखाया। जहाँ एक ओर भारतीय दर्शन का प्रचार-प्रसार किया वहीं समाज के उपेक्षित एवं दरिद्र वर्ग की सहायता के लिए अपने सहयोगियों को प्रेरित किया। कर रहे हैं। 4 जुलाई, 1902 ई. को इनका स्वर्गवास हो गया। इनकी समस्त रचनाएँ हिंदी में 'विवेकानंद साहित्य' शीर्षक से 10 भागों में प्रकाशित है जो देश-विदेश की विभिन्न भाषाओं में भी उपलब्ध है।

## एच.जी. वेल्स

एच.जी. (हार्बर्ट जॉर्ज) वेल्स (1866-1946) प्रसिद्ध अंग्रेज़ी कथाकार एवं उपन्यासकार थे। इन्होंने वैज्ञानिक गल्पसाहित्य (फंतासियाँ) लिखीं जिनमें 'द टाइम मशीन' प्रमुख है।

चरित्र प्रधान उपन्यास, हास्यकथाएँ, समाजशास्त्रीय साहित्य तथा वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित लघुकथाएँ लिखने वाले वेल्स ने 'विश्व का संक्षिप्त इतिहास' (शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्ड) जैसी विश्व प्रसिद्‌ध रचना भी हमें दी।

## राजेंद्र दीक्षित

इनका जनपद फ़र्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) के ग्राम पिपरगाँव में सितंबर 1940 ई. में जन्म हुआ। स्कूली शिक्षा वहीं पर हुई। बी.ए. तथा अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. कानपुर (आगरा विश्वविद्‌यालय) से। केंद्रीय अंग्रेज़ी संस्थान, हैदराबाद से अंग्रेज़ी शिक्षण में स्नातकोत्तर डिप्लोमा, इंग्लैंड के लैंकास्टर विश्वविद्‌यालय से भाषा विज्ञान में एम.ए. तथा भोपाल विश्वविद्‌यालय से अंग्रेजी साहित्य में पी.एच.डी.।

बारहसेनी कॉलेज, अलीगढ़ (आगरा विश्वविद्‌यालय) में अगस्त 1961 से अक्तूबर 1967 तक और फिर क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्‌यालय, भोपाल में अंग्रेजी के प्रवक्ता। 1973 से वहीं पर अंग्रेजी के रीडर और भाषा विभाग के अध्यक्ष। अप्रैल 1993 से अब तक राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग में अंग्रेज़ी के प्रोफ़ेसर। अंग्रेज़ी साहित्य एवं भाषा शिक्षण के क्षेत्र में अनेक शोधछात्रों का पी.एच.डी. शोधप्रबंध के लिए मार्गदर्शन।

हिंदी, अंग्रेज़ी तथा संस्कृत एवं साहित्य के अध्ययन के साथ बंगाली, मराठी और गुजराती भाषाओं का सामान्य व्यावहारिक ज्ञान। हिंदी से अंग्रेज़ी में अनूदित कविताओं का प्रकाशन। मध्य प्रदेश की स्नातक कक्षाओं के लिए अंग्रेज़ी के आधार पाठ्‌यक्रम की पुस्तक का सहलेखन तथा भाषा योजना एवं प्रशिक्षण पाठ्‌यक्रम पर अंग्रेज़ी लेखों का प्रकाशन। लंबे समय तक हिंदी रंगमंच के कलाकार के रूप में संबद्‌ध।